जल संस्कृति

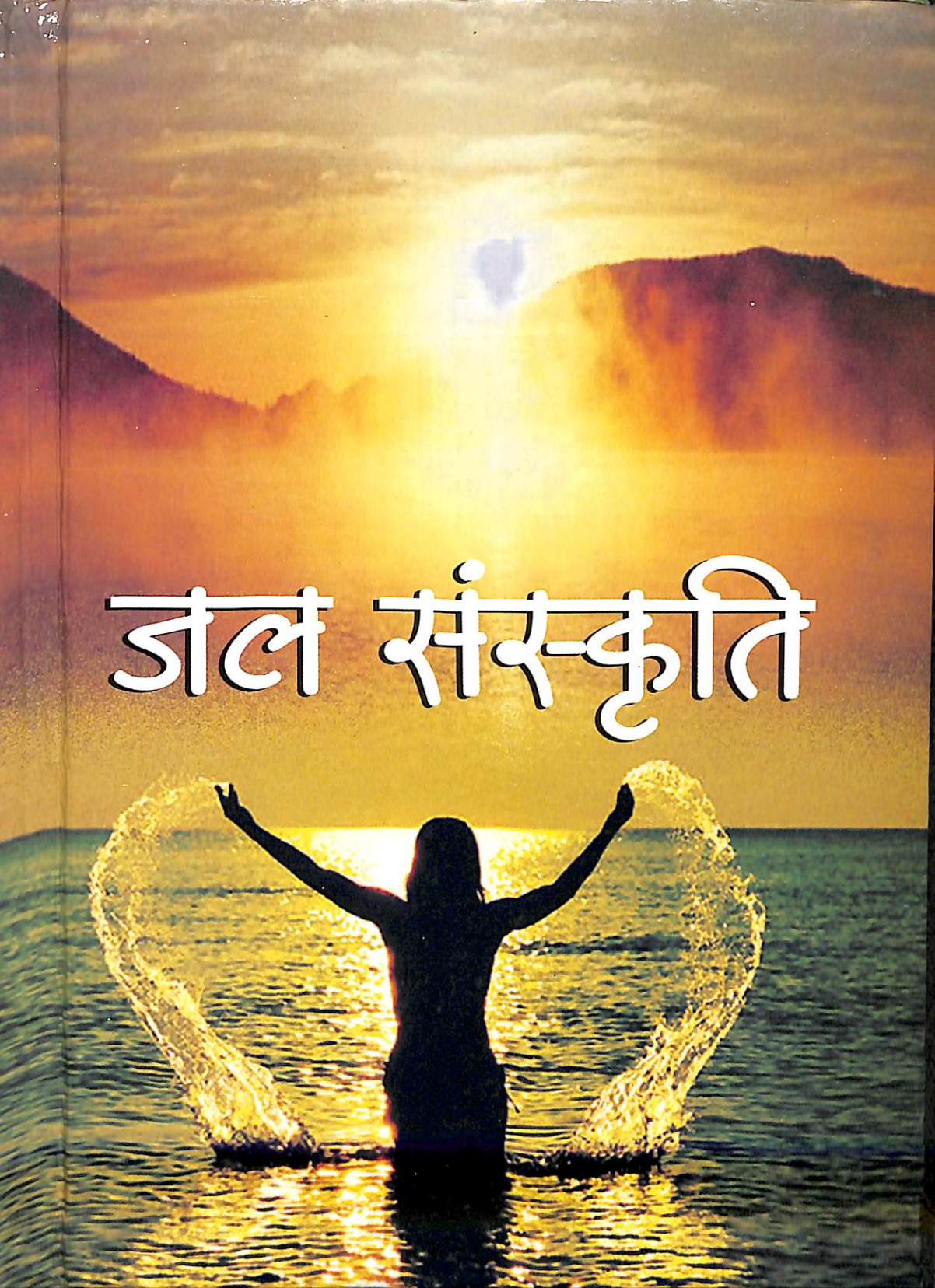

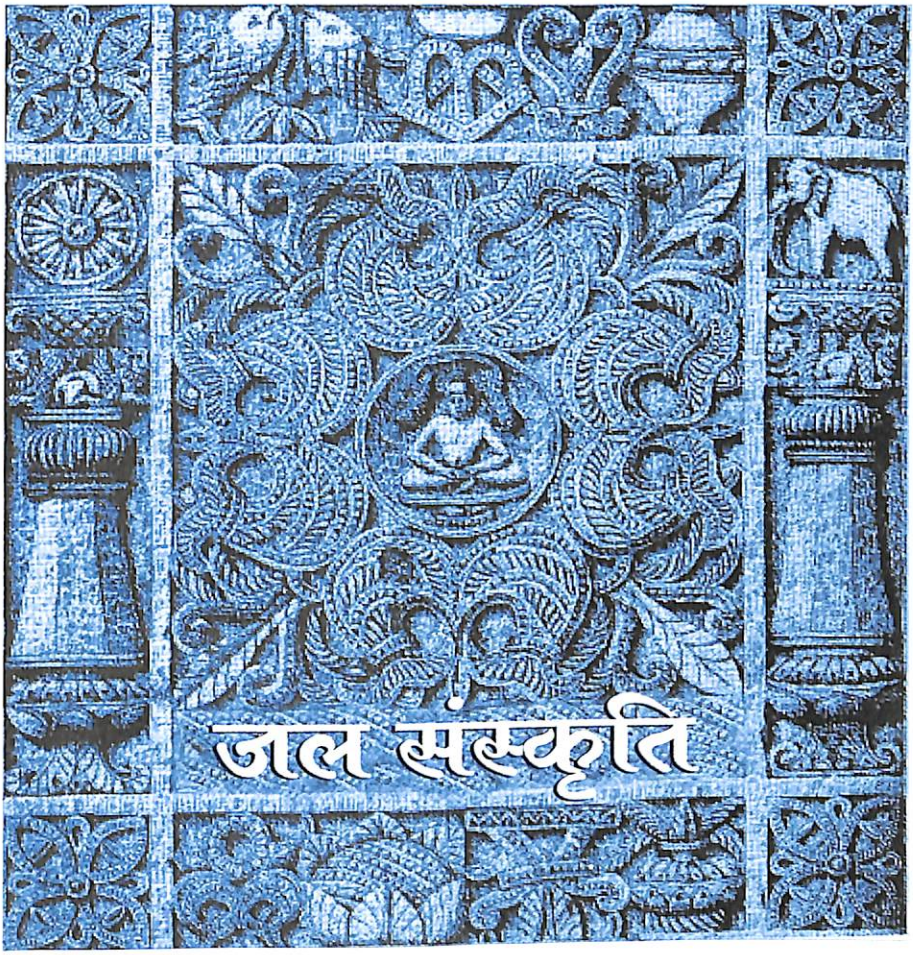
जल संस्कृति

संकलन
भारत के पूज्यनीय वेद ग्रन्थ और नीति शास्त्रों से संकलित किया है।

मूल्य
रुपए ५१/- मात्र

प्रथम संस्करण
गुरु पूर्णिमा, २००७

प्रकाशक
तरुण भारत संघ
भीकमपुरा किशोरी वाया थानागाजी,
जिला : अलवर-३०१०२२, राजस्थान
फोन : ०१४६५-२२५०४३
ई-मेल watermantbs@yahoo.com

वितरक
जल बिरादरी
३४/४६, किरण पथ,
मानसरोवर, जयपुर ३०२०२०
फोन : ०१४१-२३९१७८
ई-मेल jalbiradari@gmail.com

रूपांकन एवं मुद्रण
कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

जल स्तुति

हे जल देवता! तुम्हें परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त है।

तुम भूः भुवः और स्वः... तीनों लोकों को पवित्र करते हो,

क्योंकि तुम स्वरूप से ही पापों का नाश करने वाले हो।

हम अपने शरीर से तुम्हारा स्पर्श करते हैं।

तुम हमारे अंगों को पवित्र करो।

तुम शासकों के शासक हो! तुम में शासकों को दण्ड देने की क्षमता है।

सारी सृष्टि को आप गतिमान बनाए हुए हो।

हे जल देवता! तुम्हें शत-शत नमन्।

विषय सूची

जल स्तुति	३
आभार	५
प्राक्कथन	६
आमुख	७
पृष्ठभूमि	८
जल का अर्थ	१०
ऋग्वेद में जल का महत्व	१२
यजुर्वेद संहिता में जल का महत्व	१९
सामवेद संहिता में जल का महत्व	३०
अथर्ववेद संहिता में जल का महत्व	३७
गीता में जल का महत्व	५३
मनु स्मृति में जल महत्व और व्यवस्था	५९
चाणक्य नीति में जल दृष्टि और व्यवस्था	७७
वर्तमान समय में पर्यावरणीय दृष्टि और जल संरक्षण व्यवस्थाएं	८१

आभार

वेदों में आपः 'जल' के विषय में जानकारी करने का प्रयास किया गया कि हमारे वेदों में 'जल' की जानकारी है या नहीं। इसके लिए ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता, अट्ठारह पुराण, अन्य धार्मिक ग्रंथ, मनुस्मृति, आचार्य चाणक्य नीति में 'जल' के विषय में पढ़ा। मैंने अपने अभी तक के जीवन-काल में 'जल' के विषय में इतनी अच्छी पुस्तकें पहले कभी नहीं पढ़ी थीं। दूसरी पुस्तकों में 'जल' केवल प्रकृति के पंचमहाभूतों में से एक भूत जल लिखकर दो-चार उदाहरण जल के उपयोग के विषय में लिखे दिखाई देते हैं।

मैं कोई लेखक, अध्ययनकर्ता, शोधकर्ता, विद्वान, वैज्ञानिक कुछ भी नहीं हूँ बस १९८५ से 'जल संरक्षण' के कार्य में लगी 'तरुण भारत संघ' संस्था का कार्यकर्ता हूँ और किसान परिवार की पैतृक पृष्ठभूमि से हूँ। एक जिज्ञासावश 'जल' की जानकारी के लिए भारतीय संस्कृति की धरोहर 'वेद और पुराणों' का 'हिन्दी अनुवाद' देखने का अवसर मिला और जिज्ञासावश ललक बढ़ती गई, जितना भी समझ पाया उसे संकलित करने का प्रयास किया। एक दस्तावेज बनाने का मन हुआ। इस मन को प्रोत्साहित करने में श्री अरुण तिवारी जी ने पूरा सहयोग दिया। इसके लिए संस्था के मेरे से संबन्धित बहुत से कार्य भी प्रभावित हुए। मैंने उनकी चिन्ता किए बिना 'जल' की जानकारी संकलित करने में पूरे मन से प्रयास किया है।

जैसे-जैसे कुछ संकलित सामग्री बनती गई तो इसे प्रो. श्री मनोहर सिंह राठौड़, विकास अध्ययन संस्थान को समय-समय पर दिखाता रहा, आपके प्रोत्साहन से और भी उत्साहित होकर कुछ सामान्य रूप में जिज्ञासावश संकलन कर पाया हूँ। हमारे वेद-पुराणों में जल के विषय में अपार ज्ञान-भण्डार के रूप में है। इसे पढ़ने, समझने और व्यवहार में लेने की आज अहम आवश्यकता है। अगर यह संकलन समाज के किसी भी काम आ सके तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।

- संकलक

प्राक्कथन

भारत की जल संस्कृति के विषय में आये विचार को एक पुस्तक के रूप में लिखने का प्रयास है । सत्येन्द्रसिंह ने तरुण भारत संघ में रहकर २२ वर्षों के अपने कार्यों को देखा, समझा है और उसे लिखने-पढ़ने व संकलन करने के भाव मन में आये। उन्हें भारत की जल संस्कृति के अनुसार ही रूप-स्वरूप में प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति की धरोहर पूजनीय वेद ग्रंथ और नीति शास्त्रों में जल के विषय में जो भी कहा गया है उसी को हमारे समाज ने स्वीकार किया और उसी के अनुसार जीवन शैली अपनाकर सदियों से जीता आ रहा है। हमारी जीवन शैली को तोड़ने का हर संभव प्रयास किया गया है, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो। हमारे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अंग्रेजों के शासनकाल से चलता आ रहा है और वर्तमान में भी जारी है। समाज अपने प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करता है तो उसके आगे न जाने कितनी तरह की बाधाएं आ जाती है जिससे उसके प्रयास विफल हो जाते हैं और पराधीनता को स्वीकार करना एकमात्र उपाय उसके समक्ष आता है। जहां के समाज ने संगठित होकर अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, संवर्द्धन किया है, आज वह दुनिया के लिये एक सफल उदाहरण के रूप में देखे जा रहे हैं।

तरुण भारत संघ ने पिछले २२ सालों में ग्रामीण समाज के साथ जल संरक्षण, संवर्द्धन के जो कार्य किये हैं वे समाज की जीवन शैली के ही अनुसार हुए हैं। ग्रामीण समाज में व्याप्त जीवन शैली में ही जल संस्कृति के दर्शन होते हैं। पूजनीय वेद ग्रंथों और नीति शास्त्रों में वर्णित प्राकृतिक व्यवस्थाओं को वर्तमान समय में भी स्वीकारा जा रहा है। ऐसा माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय से प्रतीत होता है कि हमारी जीवन शैली में जल संस्कृति का कितना महत्व है। माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार हमारी सरकारें जल संरक्षण के लिये संवेदनशीलता से समाज का नेतृत्व करेंगी तो हमारी जल संस्कृति की रक्षा होगी। ऐसी आशा करता हूं, यह पुस्तक समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

- राजेन्द्र सिंह

अध्यक्ष, जल बिरादरी

आमुख

अनादिकाल से भारत में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति संवेदनशीलता रही है। पंचमहाभूतों का धर्म ग्रंथों में विस्तृत विवेचन किया गया है। पांच महाभूतों का चिरस्थाई उपयोग का एक अनूठा दर्शन रहा है। जल को धर्म का एक प्रमुख अंग बनाकर उसके संरक्षण के प्रति सचेत किया। भारतीय शास्त्रों में जल का महत्व उसकी उपयोगिता और जल दर्शन ढूंढ निकालना एक साहसिक एवं सराहनीय प्रयास है। जल जीवन है, इस वास्तविकता का अनुभव क्या आज हमारे समाज की प्रत्येक इकाई को है? उत्तर में सब लोग हां ही कहेंगे किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। जल जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के साथ रहता है और मनुष्य उसे विभिन्न रूपों में, विभिन्न मूल्यों से मापता है, फिर भी जल के महत्व को आत्मसात नहीं कर पाता। जल जीवन तो है ही किन्तु जल के अन्य उपयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। जल न होता तो शायद मनुष्य के चारों ओर गंदगी ही गंदगी रहती। इस सब के बावजूद आज मनुष्य जल के उपयोग में नितांत विवेकहीन है। यह प्रवृत्ति मनुष्य जाति को विनाश की ओर धकेल रही है। मनुष्य जब तक प्रकृति व जल से अपने रिश्ते को गंभीरता से समझ नहीं पाता तब तक भविष्य अंधकारमय ही रहेगा। हमारे धर्म ग्रंथों में जल पर विस्तृत व गहन चिंतन के साथ जो महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध हैं, जरूरत है उन्हें जानने व जीवन में उतारने की।

आज के इस विकास के दौर में पानी को मात्र भोग की वस्तु मानते हुए प्रयोग में ले रहे हैं जो आगे चलकर मानव जाति के विनाश का कारण बन सकता है। इस वृत्ति को बदलने में इस पुस्तक में संकलित हमारे पूर्वजों द्वारा दिया गया ज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। लेखक का यह संकलन कार्य इस पुस्तक के साथ समाप्त नहीं होता बल्कि शुरू होता है। अगले अंक में इस ज्ञान को आम व्यक्ति की समझ का बनाना, हमारे वैज्ञानिकों व जल प्रबंधनकर्ताओं, शासकों के लिए उपयोगी होगा। लेखक को ऐसे सूत्र ढूंढने होंगे जिसमें पढ़ने वाला जल और जीवन के इस गूढ़ रहस्य को समझ सके व अपने जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर जल के संग्रह, उपयोग, प्रबंधन अपने लिए व आने वाली पीढ़ियों के लिए कर सके।

- प्रो. एम.एस. राठौड़

विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

पृष्ठभूमि

वेद- वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रासाद जिस दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित है, उसे वेद के नाम से जाना जाता है। भारतीय आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को भली-भाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान बहुत आवश्यक है। सम्पूर्ण धर्म-कर्म का मूल तथा यथार्थ कर्तव्य-धर्म की जिज्ञासा वाले लोगों के लिए 'वेद' सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं।

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्',
'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः' मनु. २.६.१३

'वेद' शाश्वत-यथार्थ ज्ञान राशि के समुच्चय हैं- जिसे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपने प्रतिम चक्षु से देखा है- अनुभव किया है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि वेदव्यास ने यज्ञीय अनुष्ठानों की सविधि सम्पन्नता के लिए अर्थात् ऋत्विजों के उपयोगार्थ वेदों को चार प्रकार से वर्गीकृत किया, साथ ही वेदाध्ययन की यह परम्परा निरन्तर प्रवर्द्धमान रहे, इसलिए सर्वप्रथम उसे अपने चार पटु शिष्यों को पढ़ाया। वे शिष्य थे पैल, कवि जैमिनि, वैशम्पायन तथा दारुण मुनि सुमन्तु। इन्हें क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद पढ़ाया। इन चारों मुनियों ने अपने-अपने शिष्यों-प्रशिष्यों तक यह परम्परा विस्तारित की। यह विस्तार प्रक्रिया ही शाखाएं बन गईं-

चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम्।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्॥
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धताः।
तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः॥
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत।
अथर्वाङ्गिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः॥
त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैः वेदास्ते शाखिनोऽभवन्॥
श्रीमद्भागवत १.४.१९-२३

वेद भारतीय संस्कृति के ऐसे ग्रंथ हैं जिस पर प्रत्येक भारतवासी को गर्व होना चाहिए। इन वेदों में किसी राष्ट्रीय सीमा में रह कर प्रकृति के विषय में और देवताओं के विषय में स्तुति या यज्ञ हव्य-पूजा पाठ के कर्मकाण्ड के मंत्र नहीं हैं बल्कि पूरे ब्रह्मांड को ध्यान में रखकर किये गये शोध तत्व ज्ञान ग्रंथ हैं।

लाखों वर्ष पूर्व हमारे ऋषि-मुनियों ने इन ग्रन्थों का शोध कार्य किया था। उस समय इनकी उपयोगिता इतनी रही हो या नहीं, लेकिन प्रकृति और जीवन के लिए आज इनकी उपयोगिता बहुत ही महत्वपूर्ण है। किसी भी क्षेत्र के शोधकर्ता को भारतभूमि में इन ग्रंथों का अध्ययन करना अति आवश्यक है। इन्हें आधार मानकर आज के वैज्ञानिक शोध करें तो इस भारत भूमि के लिए अत्यधिक उपयोगी साबित होंगे।

'जल' के विषय में वेदों में अपार ज्ञान है। जल के विभिन्न रूप हैं और उनका विस्तार से वर्णन है। यहां सामान्य स्तर पर जानकारी के लिए 'जल' के विषय में संकलित किया है।

जल का अर्थ

मनु स्मृति प्रथम अध्याय-सृष्टि के दसवें मंत्र में कहा है कि-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।।

जल और जीवों का नाम **नारा** है, वे अयन अर्थात् निवासस्थान है जिसका, इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम **नारायण** है।

सत्यार्थ प्रकाश - महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रथम समुल्लासः

'जल घातने' - इस धातु से **'जल'** शब्द सिद्ध होता है 'जलति घातयति दुष्टान्, संघातयति - अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद ब्रह्म जलम्' जो दुष्टों को ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है। वह परमात्मा **''जल''** संज्ञक कहलाता है। यद्वा **'यज्जनयति लाति सकलं 'ज' गत् तद्ब्रह्म जलम्'** अथवा जो सबका जनक और सब सुखों का देने वाला है, इसलिए भी परमात्मा का नाम **'जल'** है।

तृतीयसमुल्लासः

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ।

पृथ्वी, **जल**, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं।

द्रव्य :- जिसमें क्रिया, गुण और केवल गुण भी रहें, उसको **'द्रव्य'** कहते हैं। पृथ्वी, **जल**, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रियारहित गुण वाले हैं।

'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्' जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्व कालस्थ हो उसी को **द्रव्य** कहते हैं। जिससे लक्ष्य जाना जाये, जैसा आँख से रूप जाना जाता है, उसको **लक्षण** कहते हैं।

जल लक्षण -

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ।।

वै.अ. २। आ. १। सू. २।।

रूप, रस और स्पर्शवान, द्रवीभूत और कोमल 'जल' कहलाता है। परन्तु उनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायु के योग से है।

अप्सु शीतता ।।

वै.अ. २। आ. २। सू. ५ ।।

जल में शीतलत्व का गुण भी स्वाभाविक है।

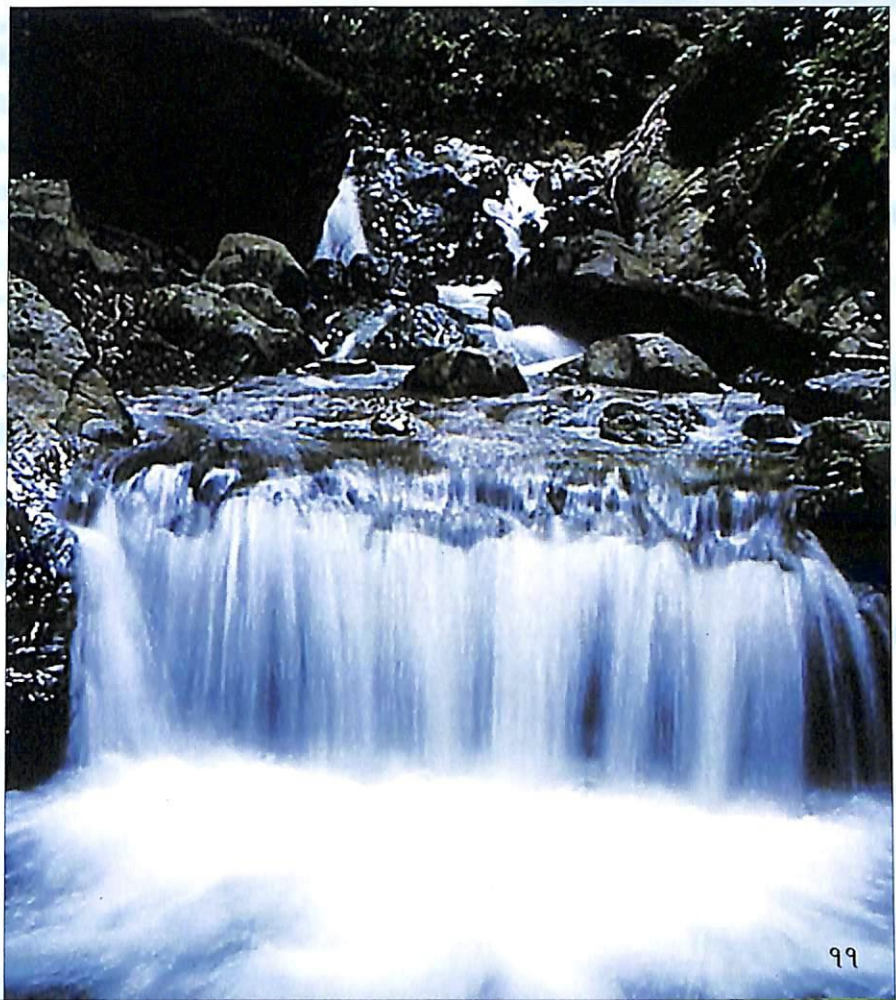

ऋग्वेद में जल का महत्व

वेद ज्ञान निधि के समुच्चय हैं, जिन्हें ऋषियों ने अपनी अन्तःप्रज्ञा से प्रकट किया है। वेद शब्द सिर्फ संहिताओं के अर्थों में प्रयुक्त होता है। इन संहिताओं में ऋक् प्रार्थना के रूप में है। अर्थात् ऋक् का विषय है शास्त्र 'होता द्वारा सामान्य ढंग से प्रयुक्त किये जाने वाले मंत्र' ऋग्वेद को दो क्रमों में प्रविभक्त किया गया है

१. **अष्टक क्रम और**

२. **मण्डल क्रम**

ऋग्वेद में **अप्** शब्द जल अर्थ में प्रयुक्त किया है तथा आपो देवता अर्थात् जल को देवता के रूप में संबोधन किया है। आपो देवता के ऋग्वेद में चार पूर्ण सूक्त हैं ७.४७, ७.४९, १०.९, तथा १०.१४ आये हैं। मुख्यत: ये जल प्रवाहों, मेघों और नदियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

ऋग्वेद संहिता के विभिन्न मंडलों में **जल** की विविध रूपों में स्तुति की गई है। जिसका वर्णन निम्नवत् है :

मण्डल प्रथम में यज्ञ की इच्छा से जल की विभिन्न प्रकार से स्तुति की गई है जल को माता स्वरूप, सूर्य किरणों के सान्निध्य से पवित्र एवं जिस जल को गायें सेवन करती हैं, उस जल को अमृत और औषधीय गुण युक्त दीर्घायु और दोषमुक्ति के साथ-साथ पवित्रकारक माना है।

मण्डल सात में जल देव से सोमरस की शुद्धि के लिए, विघ्न नाशक, नदियों के निरन्तर प्रवाह के लिए, कल्याणप्रद, जल के विभिन्न रूपों में यज्ञ की इच्छा से स्तुति की गई है। मण्डल दस में सुखों के मूल स्रोत, माताओं के दुग्ध के समान सुखकारी पोषक रस, वंश वृद्धि, रोग रहित, सुख शान्ति, अग्नितत्व से परिपूर्ण जल की स्तुति की गई है।

मण्डल एक में

सूक्त- २३ के १६-२२ तक मंत्रों में निम्नवत् वर्णन है :

मंत्र १६ में कहा है कि -

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ।।

भावार्थ है कि- यज्ञ की इच्छा करने वालों के सहायक मधुर रसरूप जल-प्रवाह, माताओं के सदृश पुष्टिप्रद है। वे दुग्ध को पुष्ट करते हुए यज्ञ मार्ग से गमन करते हैं।

मंत्र १७ में कहा है कि -

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।।

भावार्थ है कि - जो ये जल सूर्य में (सूर्य किरणों में) समाहित है। अथवा जिन जलों के साथ सूर्य का सान्निध्य है, ऐसे वे पवित्र जल हमारे यज्ञ को उपलब्ध हों। उक्त दोनों मंत्रों में अंतरिक्ष की कृषि का वर्णन है। खेत से अन्न दिखता नहीं, किन्तु उससे उत्पन्न होता है। पूषा-पोषण देने वाले देवों, यज्ञ एवं सूर्य आदि द्वारा सोम, सूक्ष्म पोषक तत्व बोया एवं उपजाया जाता है।

मंत्र १८ में कहा है कि -

अपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः

भावार्थ है कि - हमारी गायें जिस जल का सेवन करती हैं, उन जलों का हम स्तुतिगान करते हैं। अन्तरिक्ष एवं भूमि पर प्रवाहमान उन जलों के निमित्त हम हवि अर्पित करते हैं।

मंत्र १९ में कहा है कि -

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।
देवा भवत वाजिनः

भावार्थ है कि - जल में अमृतोमय गुण है, जल में औषधीय गुण है। हे देवो ! ऐसे जल की प्रशंसा से आप उत्साह प्राप्त करें।

मंत्र २० में कहा है कि -

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ।।

भावार्थ है कि - मुझ (मंत्रदृष्टा मुनि) से सोमदेव ने कहा है कि जल समूहों में सभी औषधियां सम्पादित हैं। जल में ही में ही सर्व सुख प्रदायक अग्नितत्व समाहित हैं। सभी औषधियाँ जलों से ही प्राप्त होती हैं।

मंत्र २१ में कहा है कि -

आपः पृणति भेषजं वरूथंतन्वे३ मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! जीवन रक्षक औषधियों को हमारे शरीर में स्थित करें , जिससे हम निरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करते रहें।

मंत्र २२ में कहा है कि -

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।।

भावार्थ है कि - हे जल देवो ! हम याजकों ने अज्ञानवश जो दुष्कृत्य किये हों, जान-बूझकर किसी से द्रोह किया हो, सत्पुरुषों पर आक्रोश किया हो या असत्य आचरण किया हो तथा इस प्रकार के हमारे जो भी दोष हों, सबको बहा कर दूर करें।

मंत्र २३ में कहा है कि -

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ।।

भावार्थ है कि - आज हमने जल में प्रविष्ट होकर अवमृश स्नान किया है । इस प्रकार जल में प्रवेश करके हम रस से आप्लावित हुए हैं । हे पयस्वान ! हे अग्नि देव ! आप हमें वर्चस्वी बनाएं, हम आपका स्वागत करते हैं ।

अथ सप्तमं मण्डलम् के ४७वें व ४९वें सूक्त में वर्णन है कि -
ऋषि-वसिष्ठ मैत्रावरुणि । देवता-आपः । छन्द- त्रिष्टुप

मंत्र ४७.१ में कहा कि -

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! देवत्व के इच्छुकों के द्वारा इन्द्रदेव के पीने के लिए भूमि पर प्रवाहित शुद्ध जल को मिला कर सोम रस बनाया गया है । शुद्ध पापरहित, मधुर रसयुक्त सोम का हम भी पान करेंगे ।

सूक्त ४७.२ में कहा है कि-

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ।।

भावार्थ है कि - हे जलदेवता ! आपका मधुर प्रवाह सोमरस में मिला है । उसे शीघ्रगामी अपानपात् अग्निदेव सुरक्षित रखें । उसी सोम के पान से वसुओं के साथ इन्द्रदेव मत्त होते हैं । हम देवत्व की इच्छा वाले आज उसे प्राप्त करेंगे ।

मंत्र ४७.३ में कहा है कि -

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ।।

भावार्थ है कि - ये जल देवता हर प्रकार से पवित्र करके तृप्ति सहित (प्राणियों में) प्रसन्नता भरते हैं । वे 'जलदेव' यज्ञ में पधारते हैं , परन्तु विघ्न नहीं डालते । इसलिए नदियों के निरन्तर प्रवाह के लिए यज्ञ करते रहें ।

मंत्र ४७.४ में कहा है कि -

याः सूर्योरश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

भावार्थ है कि - जिस जल को सूर्यदेव अपनी रश्मियों के द्वारा बढ़ाते हैं एवं इन्द्रदेव के द्वारा जिन्हें प्रवाहित होने का मार्ग दिया गया है। हे सिन्धो 'जलप्रवाहो ! आप उन जल धाराओं से हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें तथा कल्याणप्रद साधनों से हमारी रक्षा करें।

सूक्त ४९ में जल की आराधना निम्न मंत्रों से की गई है।
'ऋषि - वसिष्ठ मैत्रावरुणि, देवता -आपः , छन्द-त्रिष्टुप्'

मंत्र ४९.१ में कहा है कि -

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह ममावन्तु ॥

भावार्थ है कि - समुद्र जिनमें ज्येष्ठ हैं, वे जल प्रवाह सदा अंतरिक्ष से आने वाले हैं। इन्द्रदेव ने जिनका मार्ग प्रशस्त किया था, वे जल देव यहाँ हमारी रक्षा करें।

मंत्र ४९.२ में कहा है कि -

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा
उत वा याः स्वयञ्जाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो
देवीरिह मामवन्तु ॥

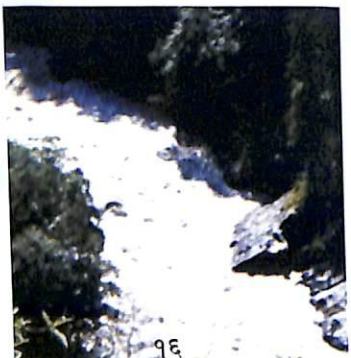

भावार्थ है कि - जो दिव्य जल आकाश से 'वृष्टि के द्वारा ' प्राप्त होते हैं, जो नदियों में सदा गमनशील हैं , खोदकर जो 'कुएं आदि से' निकाले जाते हैं और जो स्वयं स्रोतों के द्वारा प्रवाहित होकर पवित्रता बिखेरते हुए समुद्र की ओर जाते हैं, वे दिव्यतायुक्त पवित्र जल हमारी रक्षा करें।

मंत्र ४९.३ में कहा है कि -

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

भावार्थ है कि - सर्वत्र व्याप्त होकर सत्य और मिथ्या के साक्षी वरुण देव जिनके स्वामी हैं वही रस युक्ता , दीप्तिमती, शोधिका जल देवियां हमारी रक्षा करें।

मंत्र ४९.४ में कहा है कि -

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

भावार्थ है कि - राजा वरुण और सोम जिस जल में निवास करते हैं, जिसमें विद्यमान सभी देवगण अन्न से आनन्दित होते हैं; विश्व व्यवस्थापक अग्निदेव जिसमें निवास करते हैं, वे दिव्य जल देव हमारी रक्षा करें।

अथ दशमं मण्डलम् के ९ सूक्त में वर्णन है कि
ऋषि - त्रिशिरा त्वाष्ट् अथवा सिन्धुरीष, देवता-आपो
देवता 'जल', छन्द-गायत्री-वर्धवाम गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप

मंत्र ९.१ में कहा है कि -

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आप सुखों के मूल स्रोत हैं। आप हमें पराक्रम से युक्त उत्तम कार्य करने के लिए पोषक रस 'अन्न' प्रदान करें।

मंत्र ९.२ में कहा है कि -

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आप अत्यन्त सुखकर पोषक रस का हमें सेवन करने दें। जैसे बच्चे को माताएँ अपने दुग्ध से पोषण देती हैं, वैसे ही आप हमें पोषित करें।

मंत्र ९.३ में कहा है कि -

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आपका कल्याणकारी रस हमें शीघ्रता से उपलब्ध हो, जिनके द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं। आप हमारे वंश को पोषण प्रदान कर उसे आगे बढ़ाएं।

मंत्र ९.४ में कहा है कि -

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः।।

भावार्थ है कि - हमें, सुख शान्ति प्रदान करने वाला जल प्रवाह प्रकट हो। वह जल पीने योग्य, कल्याणकारी एवं सुखकर हो, मस्तक के ऊपर क्षरित होकर रोगों को हमसे दूर करे।

मंत्र ९.५ में कहा है कि -

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम्।।

भावार्थ है कि - जल प्रवाह ही मनुष्यों का इच्छित पदार्थों का स्वामी और प्राणीमात्र का आश्रयदाता 'आश्रयस्थल' है। हम उस जल से औषधियों में जीवन रस की कामना करते हैं।

अथष्ठमं मण्डलम् के मंत्र ५०.७वें मंत्र में कहा है कि -

ओमानमापो मानुषीरमृत्कं धात तोकाय तनयाय शं योः।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः।।

भावार्थ है कि - हे जल देवता ! आप समस्त स्थावर-जंगम को उत्पन्न करने वाले हैं। पौत्रादि की रक्षा के निमित्त अन्न प्रदान करें, आप माताओं से भी श्रेष्ठ चिकित्सक हैं, अतएव आप हमारे समस्त विकारों को नष्ट करें।

यजुर्वेद संहिता में जल का महत्व

यजुर्वेद संहिता - यजुर्वेद संहिता में **'वेद'** दीर्घकाल तक भारतीय जन-जीवन के अंग रहे हैं। आज यह समझा जाता है कि भारतीय जन-जीवन भी वेद विज्ञान से दूर जा पड़ा है; किन्तु 'यजुर्वेद' वेद का एक ऐसा प्रभाग है, जो आज भी जन-जीवन में अपना स्थान किसी न किसी रूप में बनाये हुए है। देव संस्कृति के अनुयायी पश्चिमी सभ्यता से कितने भी प्रभावित क्यों न हो गये हों, जन्म से लेकर विवाह एवं अन्त्येष्टि तक संस्कारपरक कर्मकाण्डों से इनका सम्बन्ध थोड़ा-बहुत बना ही रहता है। संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों के अधिकांश मंत्र यजुर्वेद के ही हैं। उनकी मंत्र शक्ति एवं प्रेरणाओं का सम्पर्क भारतीय जन-जीवन में निरन्तर बना ही हुआ है। यजुर्वेद में जल का अपना विशेष महत्व है। जल के बिना भारतीय समाज की लोक परम्पराओं में संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्ड की पवित्रता के लिये जल देवता की स्तुति अनिवार्य रूप से है। यहाँ यजुर्वेद संहिता के विभिन्न अध्यायों में जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जल स्तुति का वर्णन किया गया है।

प्रथमोऽध्याय के १२वें मंत्र द्वारा यज्ञकर्ता शक्ति प्रदान, आत्मविश्वास एवं कार्य करने के लिए उत्साहित करने के लिए कहा गया है।

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवो ग्रऽ इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपति सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ।।

भावार्थ है कि - जल को पवित्र करने तथा उसे अग्निहोत्र-हवणी पर छिड़कने का विधान है। यज्ञार्थ प्रयुक्त आप दोनों 'कुशा खण्डों या साधनों' को पवित्रकर्ता, वायु एवं सूर्य-रश्मियों से दोषरहित तथा पवित्र किया जाता है। हे दिव्य जल-समूह! आप अग्रगामी एवं पवित्रता प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ हैं। यज्ञकर्ता को आगे बढ़ाएं और सभी प्रकार 'यज्ञ को संभालने वाले यज्ञकि को, देवशक्तियों से युक्त करें।

मंत्र १३वें में कहा है कि -

युष्मा इन्द्रोवृणीत वृत्रतूर्येयूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्येप्रोक्षिताः स्थ ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोशुद्धाः प्रराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ।।

भावार्थ है कि - यज्ञीय संसाधनों पर जल सिंचन के पूर्व जल को संस्कारित करने, उपकरणों तथा हवि को पवित्र करने के लिए है। हे जल ! इन्द्र देव ने वृत्र 'विकारों' को नष्ट करते समय आपकी मदद ली थी और आपने सहयोग दिया था। अग्नि तथा सोम के प्रिय आपको, हम शुद्ध करते हैं, आप शुद्ध हों।

जल 'रस' तत्व है, आसुर वृत्यों 'वृत्रासुर' का विनाश तभी हो सकता है। जब श्रेष्ठ प्रवृत्तियों में रस आये। रस तत्व के शोधन के बिना असुर वृत्तियाँ नष्ट नहीं होतीं। इसलिए रस रूप जल का सहयोग अनिवार्य है।

अथ द्वितीयो ऽध्याय के ३४वें मंत्र में कहा है कि -

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयता मे पितृन् ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! अन्न, घृत तथा फूलों, फलों में आप रस रूप में विद्यमान हैं, अतः अमृत के समान सेवनीय तथा धारक शक्ति बढ़ाने वाले हैं, इसलिए हमारे पितृगणों को तृप्त करें।

अर्थ चतुर्थोध्यायः मंत्रों १ में कहा है कि -

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्तविश्वे ।
ऋक्सामाभ्या सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम ।
इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व
स्वधिते मैन हि सीः ।।

भावार्थ है कि - जिस यज्ञ स्थल पर सभी देवगण आनन्दित होते हैं, उस उत्कृष्ट भूमि पर हम यजमानगण एकत्रित हुए हैं, ऋक तथा सामरूपी मंत्रों से यज्ञ को पूर्ण करते हुए धन एवं अन्न से हम तृप्त होते हैं। यह दिव्य जल हमारे लिए सुख-स्वरूप हो, हे दिव्य जल गुणयुक्त औषधे! आप हमारी रक्षा करें। हे शास्त्र ! आप इस यजमान अथवा औषधि की हिंसा न करें।

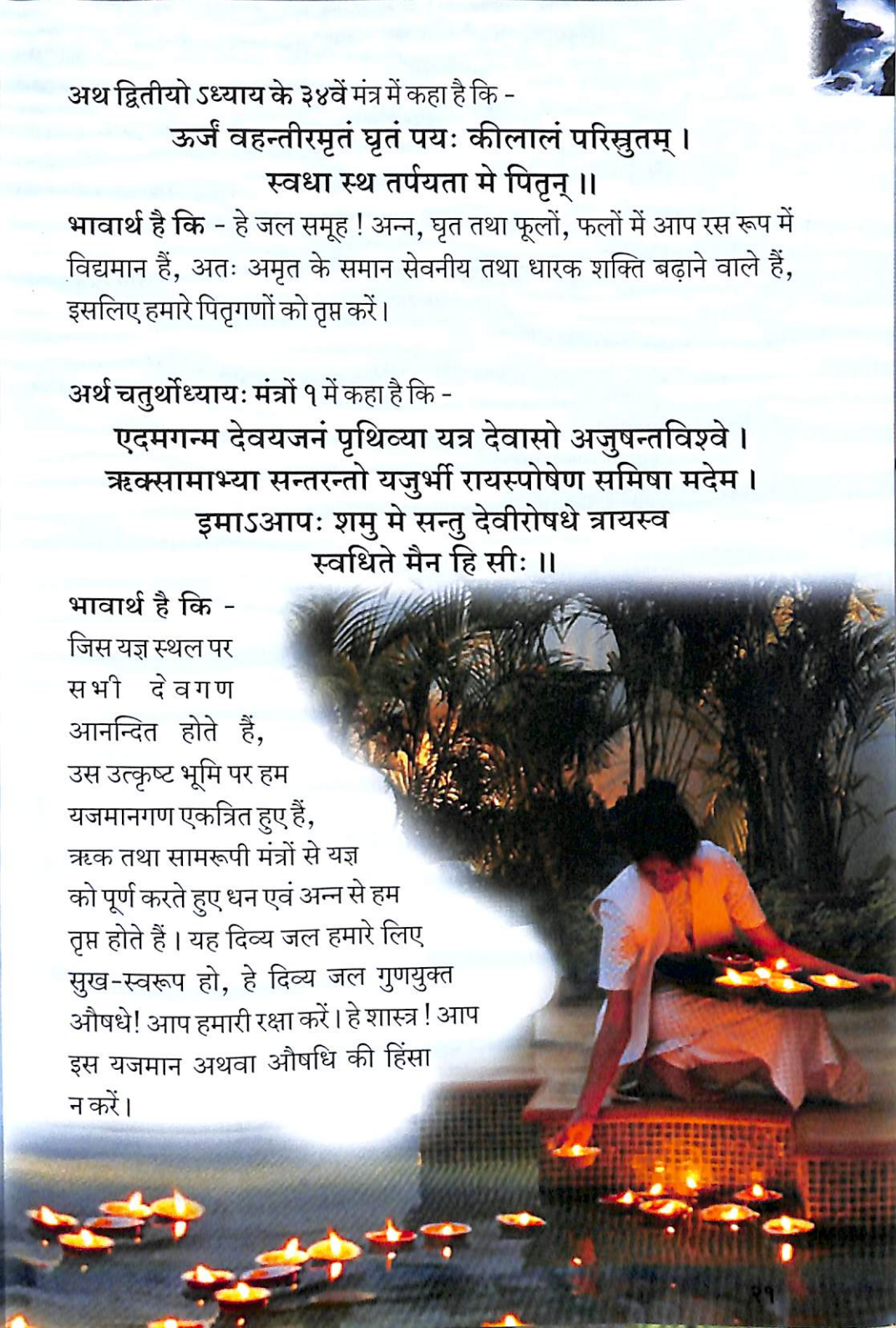

मंत्र २ में कहा है कि -

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्व हि रिप्रं प्रवहिन्त देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा शग्मां परि
दधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ।।

भावार्थ है कि - 'जगत् के निर्माण में सक्षम' हे माता के समान जल ! हमें आप पवित्र करें, घृत क्षरित से पवित्र जल हमें यज्ञ के योग्य पवित्र बनाए। तेज युक्त होता हुआ जल हमारे सभी पापों का निवारण करे। शुद्ध स्थान और पवित्र आचमन के उपरान्त हम जल के बाहर आते हैं। हे क्षैम वस्त्र आप दीक्षणी येष्टि तथा उपसदिष्टि के देवताओं के लिए समान प्रिय है। कोमल होने के कारण सुखकर मंगल करने वाली कान्ति से युक्त परिधान को हम धारण करते हैं।

मंत्र १२ में कहा है कि -

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ।
ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु
देवीरमृताऽऋतावृधः ।।

भावार्थ है कि - हे जल ! दुग्ध रूप में हमारे द्वारा सेवन किए गये आप, शीघ्र पच जाएं। पीये जाने के बाद हमारे पेट में आप सुखकारी हों, ये जल राजरोग से रहित सामान्य बाधाओं को दूर करने वाले, अपराधों को दूर करने वाले, यज्ञों में सहायक, अमृतस्वरूप दिव्यगुण से युक्त हमारे लिए स्वादिष्ट हों।

षष्ठो अध्यायः के मंत्र १७ में कहा है कि -

इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ।।

भावार्थ है कि - हे जल देवता ! आप जिस प्रकार शरीरस्थज्ञ मलों को दूर करते हैं, उसी प्रकार याजक के जो भी ईर्ष्या, द्वेष, असत्यभाषण, मिथ्या दोषारोपण, अतिनिन्दनीय कर्म हैं। आप उन सब दोषों को दूर करें। जल एक वायु अपने प्रवाह से पवित्र करके, हमें यज्ञीय प्रयोजन के अनुरूप बनाए।।

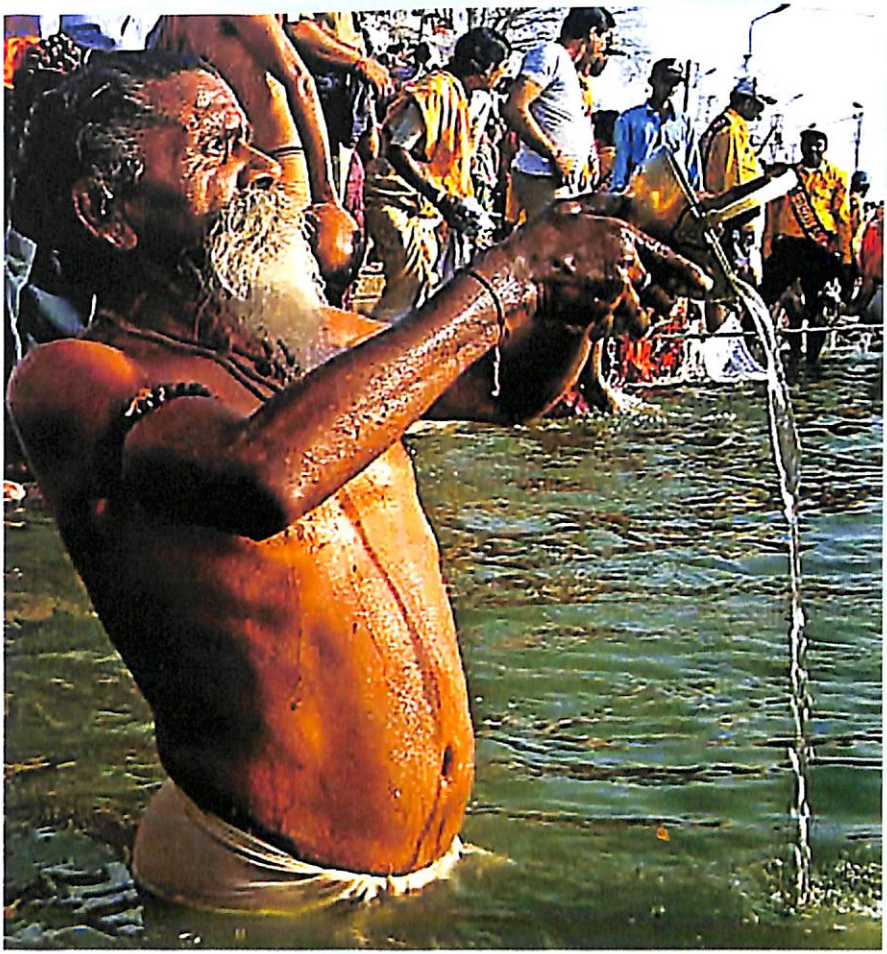

मंत्र २३ में कहा है कि -

हविष्मतीरिमाऽ आपोहविष्माँ२ आ विवासित।
हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्माँ अस्तु सूर्यः ॥

भावार्थ है कि - हे बसतीवरी जल ! आप निरन्तर श्रेष्ठ, अन्न, रस आदि उत्पन्न करते हुए यज्ञ करें। यज्ञ सदैव श्रेष्ठ हवियों से युक्त रहकर सद्गुणों का विस्तार करने वाले हों। सूर्यदेव भी यजमान को पुण्यफल प्रदान करने के लिए हवि स्वीकार करें।

मंत्र २४ में कहा है कि-

अग्नेर्वोपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ
मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ।
अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।।

भावार्थ है कि - हे बसतीवरी जल ! जो इन्द्र, अग्नि, मित्र वरुण आदि सब देवताओं तक इनका हवि भाग पहुंचाने वाली यज्ञग्नि हे, इस सुदृढ़आश्रय स्थल अग्नि के पास हम आपको पहुचाते हैं। सूर्य की किरणों द्वारा वाष्पीकृत जो जल सूर्य के पास बहुत दिनों तक सुरक्षित रहता है। वह हमारे यज्ञ को पवित्र बनाएं। 'सो यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला, नदी से लाकर रात-भर का रखा हुआ जल'।

मंत्र २७ में कहा है कि -

देवी रापो अपां नपाद्यो वऽऊर्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ।।

भावार्थ है कि - हे दिव्य जल ! आप में जो लहर के समान उठने वाले 'न गिरने वाले' हवन करने योग्य इन्द्रिय शक्ति को बढ़ाने वाले तथा देवताओं, विद्वानों तथा प्राण-प्रर्जन्य के रूप में वीर्य की रक्षा करने वालों के लिए समर्पित करें। इसमें आपका भी एक भाग सुनिश्चित है।

मंत्र २८ में कहा है कि -

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽ उन्नयामि।
समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ।।

भावार्थ है कि - हे यज्ञार्थ प्रयुक्त जल ! समुद्र पर्यन्त भूमि की उर्वरता के लिए आप ऊपर उठाते हैं। 'सूर्य-रश्मियों द्वारा वाष्प में परिवर्तित जल ऊपर पहुँचता है' प्राण प्रर्जन्य के साथ बरसे हुए जल से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस कृषि कर्म रूप में लोक हितार्थ निरन्तर यज्ञ की प्रक्रिया चलती रहती है।

अष्टमोध्यायः के मंत्र २६ में कहा है कि -

देवीरापऽ एष वो गर्भस्त सुप्रीत सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ।।

भावार्थ है कि - हे दिव्य गुण सम्पन्न जल समूह ! यह सोम पात्र आपका उत्पति स्थान है । इसे श्रेष्ठ विधि से और स्नेहपूर्वक पोषित करते हुए ग्रहण करें, हे दिव्य सोम ! आपका आश्रय स्थान जल है, इसी में वास करके सुखी रहें तथा हमारे दुखों का निवारण करके हमें सुरक्षित करें।

नवमो ध्यायः के ६ मंत्र में कहा कि -

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्व
श्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान्
वाजसास्तेनायं वाज सेत् ।।

भावार्थ है कि - जल के अन्तःस्थल में अमृत तथा पुष्टिकारक औषधियाँ हैं अश्व 'गतिशील पशु अथवा प्रकृति के पोषक प्रवाह' अमृत और औषधिरूपी जल का पान कर बलवान् हों । हे जल समूह ! आपकी ऊँची तथा वेग वान तरंगें हमारे लिए अन्न प्रदायक बनें।

अथ दशमोऽध्यायः में जल का महत्व सर्वशक्तिमान के रूप में स्वीकार किया है। मंत्र १ से ४ तक राज योग दिलाने के लिए स्तुतियों का वर्णन आया है।

मंत्र १ में कहा है कि -

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिःञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः।।

भावार्थ है कि - देवताओं ने मधुर स्वाद वाले, विशिष्ट अन्न-रस से युक्त राजाओं के द्वारा भी सेवनीय, विवेकप्रदान करने वाले जल को ग्रहण किया । जिस जल से देवताओं का मित्र वरुणों ने अभिषेक किया और जिससे शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्र देव का देवताओं ने राज्याभिषेक किया, उस जल को हम ग्रहण करते हैं।

मंत्र २ में कहा है कि -

वृष्णाऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्णऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रमष्मै देहि वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।।

भावार्थ है कि - कलकल ध्वनि करने वाली धाराओं आप बलवान, पुरुष को उच्च पद पर पहुँचाने तथा राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं। इसके लिए आपके लिए आहुति समर्पित है। आप सुखवर्षक राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं; अतः राज्य देने में समर्थ होकर राजपद प्रदान करें। आपके लिए यह आहुति समर्पित है। आप राज्य देने में समर्थ हैं अतः बलवान सेना से युक्त यजमान को राज्य प्रदान करें।

मंत्र ३ में कहा है कि -

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रादा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वतीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रंममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रंदा राष्ट्रममुष्मै देह्यापां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आप अर्थोपार्जन करने वाले हैं; अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें। आप ऐश्वर्य के बल से सामर्थ्यवान् हैं, ओजस्वी और पराक्रमी हैं तथा राष्ट्र देने में समर्थ हैं, इसके लिए यह आहुति समर्पित है, आप महान् बल तथा उत्तम सेनाओं से युक्त हैं; अतः राष्ट्र देने में समर्थ है; आप हर प्रकार से समर्थ हैं। अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें। इसके लिए आहुति समर्पित है। आप समस्त जगत के पालक, रक्षक तथा उन्हें अपने अधीन रखने में समर्थ हैं; अतः योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है।

मंत्र ४ में कहा है कि -

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रादा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रंदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्तस्वाहा वाश स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे दत्त राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्करी स्थ राष्ट्र राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्टदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽ अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आप सूर्य की कान्ति से उत्पन्न हो, स्वयं प्रकाशित होकर सबको तेज प्रदान करने वाले हैं। आप राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, हमें राष्ट्र प्रदान करें। आप सूर्य के समान तेजस्वी हैं, अतः प्रभाव से सूर्य के समान ही हैं, आप राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, इसलिए हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। आप मनुष्यों को आनन्द देने वाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए सुखदाता व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। आप गवदि पशुओं के पालनकर्ता तथा रक्षक होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए रक्षक पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए सामर्थ्यवान को राष्ट्र प्रदान करें, आप अत्यन्त बलशाली एवं महान् पराक्रमी होते हुए राष्ट्र प्रदाता है; अतः राष्ट्र प्रदान करें। इसके लिए आहुति समर्पित है। आप प्रजा को

सामर्थ्यवान, व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। आप श्रेष्ठ पुरुषों का पोषण एवं उनको धारण करने वाले हैं। अतः श्रेष्ठ गुणों से युक्त हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। आप समस्त विश्व के पोषणकर्ता तथा धारणकर्ता हैं अतः पोषण करने वाले तथा धारण करने वाले पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें। आप सभी विद्याओं एवं धर्मों के ज्ञाता तथा इन गुणों से युक्त राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं; अतः ऐसे धर्म पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए आहुति समर्पित है। हे मधुर रस वाले जल कणों ! माधुर्यमय जल समूह सहित महान् क्षात्रबल वाले पराक्रमी यजमान के लिए अपने रसों से अभिषिक्त करते हुए राष्ट्र प्रदान करें। हे जल कणों ! राक्षसों से न हारने वाले बल को आप इस क्षत्रिय 'रक्षक' में स्थापित हुए इस स्थान पर प्रतिष्ठित हों।

मंत्र ७ में कहा है कि -

सधमादो द्युम्निनीरापऽ एताऽअनाधृष्टाऽअपस्यो वसानाः।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपा शिशुर्मातृतमास्वन्तः॥

भावार्थ है कि - 'अभिषेक के लिए पात्रों में स्थापित' यह जल आनन्ददायी, तेजस्वी, उत्तम कर्मा तथा पराजित न होने वाला है। यह आवास 'घर' की तरह निवास प्रदान करने वाला, धारण करने वाला तथा माता की तरह पोषण देने वाला है, शिशु रूप यजमान आदर सहित इसे स्थापित करते हैं।

एकादषोध्यायः

मंत्र ५० में जल के विषय में कहा है कि -

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जेदधातन। महे रणाय चक्षसे॥

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आप सुख के मूल स्रोत हैं। अतः आप पराक्रम से युक्त, उत्तम, दर्शनीय कार्य करने के लिए हमें परिपुष्ट करें।

मंत्र ५१ में कहा है कि -

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आपका जो सबसे कल्याणप्रद रस यहाँ विद्यमान है, उस रस के पान में हमें वैसे ही सम्मिलित करें, जैसे वात्सल्य-स्नेह से युक्त माताएं अपने शिशुओं को कल्याणकारी दुग्धरस से पुष्ट करती हैं।

मंत्र ५२ में कहा है कि-

तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।।
आपो जनयथा च नः ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आपका वह कल्याणकारी रस पर्याप्त रूप में हमें उपलब्ध हो। जिस रस द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं और जिसके कारण आप हमारे उत्पत्ति के निमित्त भूत हैं, ऐसे जनोपयोगी अपने गुणों से युक्त हमें अभिपूरित करें।

सामवेद संहिता में जल का महत्व

सामवेद संहिता - ''**वेदानां सामवेदोऽस्मि**'' कहकर गीता में भगवान श्री कृष्ण ने सामवेद की गरिमा को प्रकट किया है। साथ ही इस उक्ति के रहस्य की एक झलक पाने की ललक हर स्वाध्यायशील के मन में पैदा कर दी है। यों तो वेद के सभी मंत्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक होने के कारण लौकिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों से लबालब भरे हैं, फिर सामवेद में ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण गीता ज्ञान को प्रकट करने वाले ने यह कहा कि **'वेदों में मैं सामवेद हूं'**।

ऋषियों ने 'वेद' सम्बोधन किसी पुस्तक विशेष के लिए नहीं किया है, उसका अर्थ है दिव्य साक्षात्कार से उद्भूत ज्ञान। इस आधार पर 'वेद' कोई पुस्तक नहीं, ज्ञान की एक विशिष्ट परिष्कृत धारा है, तो सामवेद को भी मंत्रों का एक संग्रह न कहकर ज्ञान की अभिव्यक्ति या उपयोग की एक विशिष्ट विधा ही कहा जा सकता है कि वेद की सामधारा या विधा को समझ लेने के लिए ''मुझे'' परमात्म-चेतना को भी, यहाँ ज्ञान के साथ भावना का संयोग है, समझा जा सकता है।

सामवेद संहिता के पूर्वार्चि के ऐन्द्रपर्वणि
तृतीययोध्याय के द्वाविंशः खण्डः के मंत्र ९ में कहा है कि -
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥

भावार्थ है कि - अंतरिक्ष में दैदीप्यमान इन्द्रदेव का वज्र उपासकों के लिए मधुर जल 'पोषक रस' प्रेरित करता है। पृथ्वी पर प्रवहमान वही जल गौओं में दुग्ध के रूप में और वनस्पति में पोषक रस के रूप में विद्यमान है।

त्रिंशः खण्डः के ८वें मंत्र में इन्द्र की स्तुति में जल से उपमा की गई, कहा है कि -

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥

भावार्थ है कि - जैसे जल के साथ जाते हुए लोग 'आवश्यकतानुसार जल से तृप्त होते हैं,' वैसे, हे प्रशंसा के योग्य इन्द्र ! अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं, निकट आकर आपकी स्तुति करते हैं।

पावमानं पर्व अथ पंचमोऽध्यायः के प्रथम खण्ड के ७वें मंत्र में सोम की स्तुति में जल की महिमा का वर्णन है -

असाव्यं शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ।।

भावार्थ है कि - पर्वत पर उत्पन्न सोम आनन्द के लिए निचोड़ा गया एवं जल के संयोग से व्यापक बना और श्येन पक्षी के समान अपने निश्चित स्थान पर विराजित है।

पंचम खण्डः के प्रथम मंत्र में कहा गया है कि-

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ।।

भावार्थ है कि - सोम रस पवित्र होकर जल में मिल कर धरा सहित नीचे कलश में प्रवाहित होता है। रत्नादि देने वाला, यज्ञ मण्डप में आसीन, आलोकित होता हुआ, वह सोमरस प्रवाहित होता है।

पूर्वार्चिके आरण्यपर्वणि षष्ठोध्यायः के चतुर्थ खण्ड के १२वें मंत्र में गौओं की स्तुति में कहा है कि -

सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रुपाणि बिभ्रतीर्द्ध्यूधनीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ।।

भावार्थ है कि - वृषभों और बछड़ों सहित, बड़े थन वाली अनेक रूप-रंग वाली हे गौओं ! तुम हमारे पास आओ। यह महान् लोक तुम्हारे वास के योग्य हो, यह जल तृप्ति कारक होकर तुम्हें प्राप्त हो ।।

सामवेद-संहिता - उत्तरार्चिक:

अथ चतुर्थोध्याय: के प्रथम खण्ड के ११वें मंत्र में जल को यज्ञ रक्षक के रूप में माना है, कहा है कि -

विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्
गोपामृतस्य विर्भरत् ।।

भावार्थ है कि - यज्ञ रक्षक, जल-प्रेरक, स्वयं प्रकाशित देव शक्तियों को सहजता से प्राप्त होने वाला दिव्य सोम आकाश को संव्याप्त कर लेता है। सोम जल के साथ मिलकर, प्राण रस बनता है, प्रेरणादायी है, इन्द्र,अग्नि अश्विनी कुमारों के लिए सूर्य स्तुति में सोम की प्रधानता है।

पंचमोध्याय: के प्रथम खण्ड के १२वें मन्त्र में कहा है कि -

परिण: शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वत: ।
सरा रसेव विष्टपम् ।।

भावार्थ है कि - हे सोम देव ! जल से घिरी हुई पृथ्वी की भाँति आप अपनी सुखद रस धारा से हमें चारों ओर से घेर लें। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आपकी अनुकम्पा से सुखद अनुभूति का लाभ मिले।

द्वितीय खण्ड के ३ मंत्र में कहा है कि -

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत्॥

भावार्थ है कि - आकाश में मन्द गति से विचरण करने वाला पवित्र किया हुआ सोमरस, सागर, नदी, जलाशय, आदि की लहरों को प्राप्त होता है।

षष्ठः खण्ड के ७वें मंत्र में कहा है कि -

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन्॥

भावार्थ है कि - जल में मिश्रित होने वाला, शक्तिशाली सोम स्तुतिमान करते हुए ऋत्विजों 'साधकों' द्वारा शोधन यन्त्रों से शोधित किया जाता है। अन्तरिक्ष, वनस्पति एवं जीव जगत् रूप तीन पात्रों में विद्यमान उस दिव्य सोम की ज्ञानी जन वन्दना करते हैं।

षष्ठोध्यायः प्रथम खण्ड के मंत्र ३ में कहा है कि -

ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्य :।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः॥

भावार्थ है कि - हरे वर्ण के तीव्रगामी अश्वों 'किरणों' से सभी लोकों में संव्याप्त, जगत् के स्वामी, हे तेजस्वी सोम! मधुर स्निग्ध जलधाराओं में आपका रस 'शक्ति' स्थिर रहे। हे दिव्य सोम! आपकी प्रेरणा से याजकगण सत्कर्म में निरत रहें।

अथ दशमोध्यायः के प्रथम खण्ड के प्रथम मंत्र में कहा है कि -

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो
वावृधे स्वानो अद्रिः ।।

भावार्थ है कि - जल की वृष्टि करने वाला, सर्वरक्षक दिव्यसोम, विस्तृत आकाश में सर्वप्रथम प्रजाओं की उत्पति करके श्रेष्ठतम महत्व को प्राप्त हुआ, तदन्तर पृथ्वी के ऊपर स्थापित प्राकृतिक शोधक 'छन्ने' के द्वारा प्रवेश करता हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है।

मंत्र ५ में कहा है कि -

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ।।

भावार्थ है कि - श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा प्रशंसित होने वाला यह दिव्य सोम, हविदाता को धन प्रदान करता हुआ, जल में मिश्रित होता है।

अथ त्रयोदशोध्यायः के प्रथम खण्डः के प्रथम मंत्र में कहा है कि-

पवस्व वृष्टिमा सुनोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ।।

भावार्थ है कि - हे दिव्य सोम ! आप हमारे लिए द्युलोक से उत्तम रीति से वृष्टि करें। जल को तरंगित करें और स्वास्थ्यकारी अन्न हमें प्रदान करें।

मंत्र २ में कहा है कि-

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम्।।

भावार्थ है कि - हे सोम देव आप इस दिव्य जलधारा से पवित्र हों अर्थात् 'जल बरसाएं' जिससे दुधारू गौएं 'पोषक तत्व अन्नादि' हमारे घर पहुँचे।

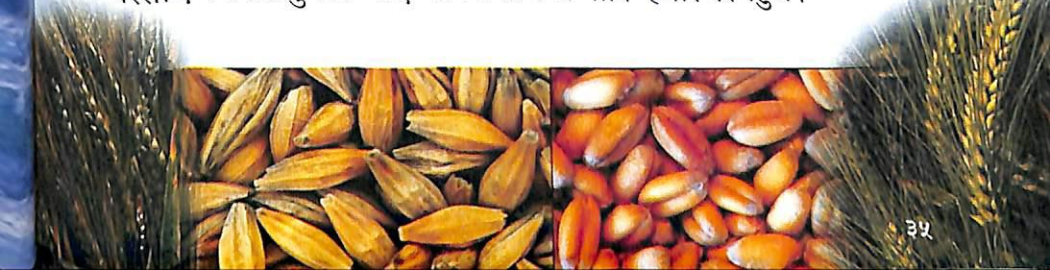

अथ षोड्शोऽध्यायः के चतुर्थः खण्डः के १२ मंत्र में कहा कि-

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्वां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्रुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ।।

प्रगतिशील राजा, सोम, जल में मिश्रित होता हुआ प्रशंसित होता है। वह दिवस का मापक निर्माण करने वाला **'सोम जल'** में स्थापित है, हरित वर्ण के जलमिश्रित, सुन्दर दर्शनीय और जल में निवास करने वाला ज्योतिस्वरूप रथ वाला सोम धनाभार स्वरूप है।

विंशोध्यायः सप्तम्ः खण्ड के ४, ५, ६, मंत्रों में जल की महत्वता का वर्णन है।

मंत्र ४ में कहा है कि -

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जेदधातन ।
महे रणाय चक्षसे ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! आप सुख के उत्पति कारक हैं। हमारे बल, वैभव एवं रमणीय ज्ञान प्रदान करने वाले बनें।

मंत्र ५ में कहा है कि -

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ।।

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! अपने अत्यन्त सुखकारी रस रूप का हमें सेवन करने दें। जैसे बच्चे को माता अपने दुग्ध रूप रस से पोषित करती है।

मंत्र ६ में कहा है कि -

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः

भावार्थ है कि - हे जल समूह ! जिस ऐश्वर्य 'रोग निवारक शक्ति' को धारण करने की आप प्रेरणा देते हैं पुत्र, पौत्रों के साथ हम उसे प्राप्त करें।

अथर्ववेद संहिता में जल का महत्व

अथर्ववेद - वेद के प्रत्येक विभाग की तरह अथर्ववेद की अपनी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके आधार पर अनेक वेदज्ञ उसे अतुलनीय मानते हैं। वेद की अन्य शाखाओं में अपनी-अपनी विशिष्ट दिशाएं हैं, किन्तु अथर्ववेद तो अपने अंक में मानो जीवन की समग्रता को समेटे हुए है। सृष्टि के गूढ़ रहस्यों, दिव्य प्रार्थनाओं, यज्ञीय प्रयोगों, रोगोपचार, विवाह, प्रजनन, परिवार, समाज-व्यवस्था एवं आत्मरक्षा आदि जीवन के सभी पक्षों का इसमें समावेश है। वेद की अन्य धाराओं में 'गूढ़ ज्ञान के साथ शुद्ध विज्ञान है किन्तु अथर्ववेद में विज्ञान की गूढ़ धाराओं के साथ व्यावहारिक विज्ञान भी है।

जीवन को सुखमय तथा दुःखविरहित बनाने के उद्देश्य से ऋषियों ने जिन यज्ञीय अनुष्ठानों का विधान बनाया है, उनके पूर्ण निष्पादन के निमित्त जिन चार ऋत्विजों की आवश्यकता बताई है, उनमें से अन्यतम प्रमुख ऋत्विज ब्रह्मा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इसी वेद से है। ''ब्रह्मा'' का स्थान यज्ञ-संसद के ऋत्विजों में प्रधान है।

'ब्रह्मा' का दायित्व यज्ञीय नाना विधियों का निरीक्षण तथा त्रुटियों का परिमार्जन करना है। इसके लिए उसको सर्ववेदविद् होना अनिवार्य होता है तथा उसे मनोबल-सम्पन्न भी होना चाहिए। अथर्ववेद में शान्ति-पुष्टि तथा आभिचारिक-दोनों तरह के अनुष्ठान प्रयोग वर्णित हैं। राजा के लिए शान्तिक-पौष्टिक कर्म तथा तुला पुरुषादि महादान की विशेष आवश्यकता पड़ती है। जो अथर्ववेद का मुख्य प्रतिपाद्य है। मत्स्य पुराण का कहना है कि पुरोहित को अथर्वमंत्र तथा ब्राह्मण में पारंगत होना चाहिए। अथर्वपरिशिष्ट में तो यहां तक लिखा है कि अथर्ववेद का ज्ञाता शान्तिकर्म का पारगामी 'पुरोहित' जिस राष्ट्र में रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवों से हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह अथर्ववेदविद् तथा जितेन्द्रिय पुरोहित का दान-सम्मान, सत्कारपूर्वक नित्यप्रति पूजन-अर्चन करे। अथर्ववेद की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर सम्भवतः कुछ आचार्यों ने इसे प्रथम वेद के रूप में स्वीकारा है।

अथर्ववेद में आपः **'जल'** को विशेष महत्व मिला है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जहां ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि की स्तुति से हुआ है, वहीं अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के ४-५-६ सूक्तों में आपः 'जल' की स्तुति है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के छठे सूक्त के प्रथम मंत्र में आपः को देवी बताते हुए उनकी शक्तियों और उपयोग पर भी प्रकाश डाला गया है। इन्हें यज्ञ, पान और रोगों के शमन तथा भय के निवारण हेतु कल्याणकारी विवेचित किया गया है-

शं नो देवीरभिष्टयआपो भवन्तु पीतये।
शं यो रभि स्रवन्तु नः॥

अथर्ववेद संहिता - अथर्ववेद संहिता प्रथम काण्ड में सूक्त ४ - **अपांभेषज जल चिकित्सा'।**

''**ऋषि** - सिन्धुद्वीप। **देवता** - आपांनपात्, सोम और आपः देवता। **छन्द** - गायत्री, ४ पुरस्ताद् बृहती।''

मंत्र १ में कहा कि -

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ।।

भावार्थ है कि - माताओं-बहिनों की भांति यज्ञ से उत्पन्न पोषक धाराएं यज्ञ-कर्ताओं के लिए पय 'दूध या पानी' के साथ मधुर रस मिलाती हैं।

मंत्र २ में कहा है कि -

अमूर्या उप सूर्येयाभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।।

भावार्थ है कि - सूर्य के सम्पर्क में आकर पवित्र हुआ वाष्पीकृत जल, उसकी शक्ति के साथ पर्जन्य वर्षा के रूप में हमारे सत्कर्मों को बढ़ाए- यज्ञ को सफल बनाए।

मंत्र ३ में कहा है कि -

अपो देवीरूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ।।

भावार्थ है कि - हम उस दिव्य 'आपः' प्रवाह की अभ्यर्थना करते हैं जो सिन्धु अन्तरिक्ष के लिए हवि प्रदान करते हैं तथा जहाँ हमारी गौएं 'इन्द्रियां और वाणियां' तृप्त होती हैं ।

मंत्र ४ में कहा है कि -

अप्स्वोन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो
गावो भवथ वाजिनीः ।।

भावार्थ है कि - जीवन शक्ति, रोगनाशक एवं पुष्टिकारक आदि दैवी गुणों से युक्त आपः तत्व हमारे अश्वों व गौओं को वेग एवं बल प्रदान करें, हम बल-वैभव से सम्पन्न हों।

सूक्त ५ - अपांभेषज 'जल चिकित्सा'

''**ऋषि** - सिन्धुदीप । **देवता** - अपांनपात्, सोम और आपः देवता । **छन्द** - गायत्री, ४ वर्धमान गायत्री।''

मंत्र १ में कहा है कि

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ।।

भावार्थ है कि - हे आपः ! आप प्राणिमात्र को सुख देने वाले हैं। सुखोपभोग एवं संसार में रमण करते हुए, हमें उत्तम दृष्टि की प्राप्ति हेतु पुष्ट करें।

मंत्र २ में कहा है कि -

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ।।

भावार्थ है कि - जिनका स्नेह उमड़ता ही रहता है, ऐसी माताओं की भांति आप हमें अपने सबसे अधिक कल्याणप्रद रस में भागीदार बनाएं।

मंत्र ३ में कहा है कि -

तस्मा अरं गमाम वो यस्यक्षयायजिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ।।

भावार्थ है कि - अन्नादि उत्पन्न कर प्राणिमात्र को पोषण देने वाले हे दिव्य प्रवाह! हम आपका सान्निध्य पाना चाहते हैं। हमारी अधिकतम वृद्धि हो ।।

मंत्र ४ में कहा है कि-

ईशान वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ।।

भावार्थ है कि - व्याधि निवारक दिव्य गुण वाले जल का हम आह्वान करते हैं। वह हमें सुख समृद्धि प्रदान करे। इस औषधि रूप जल की हम प्रार्थना करते हैं।

सूक्त - ६ अपांभेषज 'जल चिकित्सा'

''**ऋषि** - सिन्धु द्वीप, कृति अथर्वा अथवा। **देवता** - अपांगनपात्, सोम और आपः देवता। **छन्द** - गायत्री, ४ पथ्यापंक्ति।''

मंत्र १ में कहा है कि -

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ।।

भावार्थ है कि - दैवी गुणों से युक्त आपः 'जल' हमारे लिए हर प्रकार से कल्याणकारी एवं प्रसन्नतादायक हो। वह आकांक्षाओं की पूर्ति करके आरोग्य प्रदान करें।

मंत्र २ में कहा है कि -

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ।।

भावार्थ है कि - सोम का हमारे लिए उपदेश है कि दिव्य आपः हर प्रकार से औषधीय गुणों से युक्त है। उसमें कल्याणकारी अग्नि भी विद्यमान है।

मंत्र ३ में कहा है कि -

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम।
ज्योकच सूर्यं दृशे ।।

भावार्थ है कि - दीर्घकाल तक मैं सूर्य को देखूं अर्थात् दीर्घ जीवन प्राप्त करूं- हे आपः शरीर को आरोग्यवर्द्धक दिव्य औषधियां प्रदान करो।

मंत्र ४ में कहा है कि -

शं न आपो धन्वन्या३ः शुम सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शुम याः कुम्भ
आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ।।

भावार्थ है कि - सूखे प्रान्त रेगिस्तान का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो। जलमय देश का जल हमें सुखप्रदान करे। भूमि से खोदकर निकाला गया कुएं आदि का जल हमारे लिए सुखप्रद हो। पात्र में स्थित जल हमें शान्ति देने वाला हो। वर्षा से प्राप्त जल हमारे जीवन में सुख-शान्ति की वृष्टि करने वाला सिद्ध हो।

सूक्त ३३ -आपः

''**ऋषि** - शन्ताति। **देवता** - चन्द्रमा और आपः। **छन्द** - त्रिष्टुप्''

मंत्र १ में कहा है कि -

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गमं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ।।

भावार्थ है कि - जो जल सोने के समान आलोकित होने वाले रंग से सम्पन्न, अत्यधिक मनोहर, शुद्धता प्रदान करने वाला है, जिससे सवितादेव और अग्निदेव उत्पन्न हुए हैं जो श्रेष्ठ रंग वाला जल अग्निगर्भ है, वह जल हमारी व्याधियों को दूर करके हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे।

मंत्र २ में कहा है कि -

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
या अग्निं गमं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ।।

भावार्थ है कि - जिस जल में रह कर राजा वरुण सत्य एवं असत्य का निरीक्षण करते हैं, जो सुन्दर वर्ण वाला जल अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह हमारे लिए शान्तिप्रद हो।।

मंत्र ३ में कहा है कि -

यासां देवा देविं कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भ दधिरे सुवर्णास्त न आपः शं स्योना भवन्तु ।।

भावार्थ है कि - जिस जल के सारभूत तत्व का तथा सोमरस का इन्द्रदेव आदि देवता द्युलोक में सेवन करते हैं। जो अन्तरिक्ष में विविध प्रकार से निवास करते हैं, वह अग्निगर्भ जल हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे।

मंत्र ४ में कहा है कि -

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवयाः
तन्वोप स्पृशत त्वचां मे ।
धृतश्चुतः शुचयो याःपावकास्ता न
आपः शं स्योना भवन्तु ।।

भावार्थ है कि - हे जल के अधिष्ठाता देव ! आप अपने कल्याणकारी नेत्रों से हमें देखें तथा अपने हितकारी शरीर द्वारा हमारी त्वचा का स्पर्श करें । तेजस्विता प्रदान करने वाला शुद्ध तथा पवित्र जल हमें सुख तथा शान्ति प्रदान करे ।

अथ द्वितीयं काण्डम् -सूक्त २३- शत्रुनाशन

मंत्र १ में कहा है कि -

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत
योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।

भावार्थ है कि - हे जल देवता ! आपके अन्दर जो ताप 'प्रताप' है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को संतप्त करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।

मंत्र २ में कहा है कि -

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आपके अन्दर हरण करने की शक्ति है । उस शक्ति के द्वारा हरण करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।

मंत्र ३ में कहा है कि -

आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आपके अन्दर जो प्रज्वलन शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा उन रिपुओं को जला दें जो हमसे विद्वेष करते है तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।

मंत्र ४ में कहा है कि -

आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आप के अन्दर शोकाकुल करने की शक्ति है, इस शक्ति के द्वारा आप उन मनुष्यों को शोकाकुल करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं।

मंत्र ५ में कहा है कि -

आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।

भावार्थ है कि - हे जल देव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, इसके द्वारा आप रिपुओं को तेज विहीन करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं।

काण्ड - ३ सूक्त ७ - यक्ष्मनाशन

मन्त्र ५ में कहा है कि-

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।।

भावार्थ है कि - जल समस्त रोगों की औषधि है। स्नानपान आदि के द्वारा यह जल औषधि रूप में सभी रोगों को दूर करता है जो अन्य औषधियों की भांति किसी एक रोग की नहीं, वरन् समस्त रोगों की औषधि है, हे रोगिन् ऐसे जल से तुम्हारे सभी रोग दूर हों।

काण्ड - ३ सूक्त १३ आपो देवता !

मंत्र १ में कहा कि-

एददः संप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो३नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः।

भावार्थ है कि - हे सरिताओ ! आप भली प्रकार से सदैव गतिशील रहने वाली हैं। मेघों का ताड़ित होने, बरसने के बाद आप जो कल-कल ध्वनि नाद कर रही हैं; इसलिए आपका नाम 'नदी' पड़ा। वह नाम आपके अनुरूप ही है।

मंत्र २ कहा है कि -

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठान ।

भावार्थ है कि - जब आप वरुण द्वारा प्रेरित होकर शीघ्र ही मिलकर नाचती हुई सी चलने लगीं, तब इन्द्र देव ने आपको प्राप्त किया। इस 'आप्नोत्' क्रिया के कारण आप का नाम 'आपः' पड़ा।

मंत्र ३ में कहा है कि-

अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ।।

भावार्थ है कि - आप बिना इच्छा के सदैव प्रवाहित होने वाले हैं। इन्द्रदेव ने अपने बल के द्वारा आप का वरण किया। इसलिए हे देवन शील जल ! आपका नाम 'वारि' पड़ा।

मंत्र ४ में कहा है कि -

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ।।

भावार्थ है कि - हे यथेच्छ 'आवश्यकतानुसार' बहने वाले 'जल तत्व' ! एक 'श्रेष्ठ' देवता आपके अधिष्ठाता हुए । 'देव संयोग से' महान् ऊर्ध्वश्वास 'उर्ध्वगति' के कारण आपका नाम उदक हुआ।

मंत्र ५ में कहा है कि -

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ' बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ।।

भावार्थ है कि - 'निश्चित रूप से' जल कल्याणकारी है, घृत 'तेज प्रदायक' है। इसे अग्नि और सोम पुष्ट करते हैं। वह जल, मधुरता से पूर्ण तथा तृप्तिदायक तीव्र रस हमें प्राण तथा वर्चस् के साथ प्राप्त हो।

मंत्र ६ में कहा है कि -

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा
घोषो गच्छति वाड.मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ।।

भावार्थ है कि - निश्चित रूप से मैं अनुभव करता हूँ कि इनके द्वारा उच्चरित शब्द हमारे कानों के समीप आ रहे हैं। चमकीले रंग वाले हे जल ! आपका सेवन करने के बाद अमृतोपम भोजन के समान हमें तृप्ति का अनुभव हुआ।

मंत्र ७ में कहा है कि -

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ।।

भावार्थ है कि - हे जल प्रवाहों ! यह 'तुष्टिदायक प्रभाव' आपका हृदय है। हे ऋत प्रवाही धाराओ ! यह 'ऋत' आपका पुत्र है, हे शक्ति प्रदायक धाराओ ! यहां इस प्रकार आओ , जहां तुम्हारे अन्दर इन 'विशेषताओं' को प्रविष्ट करूं।

काण्ड - ६ - २३ आपंभैज्य सूक्त

ऋषि - शन्ताति । **देवता** - आपः । **छन्द** -१ अनुष्टुन, २ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक्

मंत्र १ में कहा है कि -

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नत्कं च सस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ।।

भावार्थ है कि - हम श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोग निरन्तर गतिमान् जल धाराओं में प्रवाहित दिव्य आपः ''सृष्टि के मूल सक्रिय तत्व का आह्वान करते हैं।

मंत्र २ में कहा कि -

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ।।

भावार्थ है कि - सर्वत्र व्याप्त, निरन्तर गतिमान् जल धाराएं क्रियाशक्ति उत्पन्न करके हमें इन 'हीनताओं' से मुक्त करें, हम शीघ्र प्रगति करें।

मंत्र ३ में कहा है कि -

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप औषधीः शिवाः।।

भावार्थ है कि - सबके प्रेरक -उत्पादक सविता देवता की प्रेरणा से सब मनुष्य अपने-अपने नियत लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के काम करें । कल्याणकारी औषधियों की वृद्धि एवं हमारे लिए जल कल्याणकारी एवं पाप क्षयकारी सिद्ध हो।

२४ अपांभैषज्य सूक्त -

ऋषि - शन्ताति **देवता** - आपः **छन्द** - अनुष्टुप्।

मंत्र १ में कहा है कि -

हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह महां तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ।।

भावार्थ है कि - हिमाच्छादित पर्वतों की जल धाराएं बहती हुई समुद्र में मिलती हैं, ऐसी पापनाशक जल धाराएं हमारे हृदय के दाह को शान्ति देने वाली औषधियाँ प्रदान करें।

मंत्र २ में कहा है कि -

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पाष्णर्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ।।

भावार्थ है कि - जो-जो रोग हमारी आंखों, ऐड़ियों और पैरों के आगे के भागों को व्यथित कर रहे हैं, उन सब दुखों को वैद्यों का भी उत्तम वैद्य जल हमारे शरीर से निकाल कर बाहर करे।

मंत्र ३ में कहा है कि -

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य१स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ।।

भावार्थ है कि - आप समुद्र की पत्नियाँ हैं, समुद्र आपका सम्राट् है । हे निरन्तर बहती हुई जल धाराओ ! आप हमें पीड़ा से मुक्त होने वाले रोग का निदान दें, जिससे हम आपके स्वजन निरोग होकर अन्नादि बल देने वाली वस्तुओं का उपभोग कर सकें।

गीता में जल का महत्व

श्री कृष्ण ने महाभारत में युद्ध क्षेत्र में अर्जुन का मोह भंग करने व क्षत्रिय धर्म के उद्देश्य से जो उपदेश दिया जिसमें अर्जुन को अपने नामों की व्याख्या करते हुए बताया कि नर पुरुष से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं, वह नार 'जल' पहले मेरा अयन 'निवास स्थान' था, इसलिए मैं 'नारायण' कहलाता हूँ।

अध्याय दो के सत्तरवें श्लोक में आत्मा और परमात्मा के संबंध में उदाहरण स्वरूप समझाने के लिए नदियों और समुद्र से तुलना की गई। अध्याय सात के चार-पांच श्लोकों में प्रकृति के विषय में बताया गया है । छः व आठ श्लोक में सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण के रूप में प्रस्तुत किया है। अध्याय नौ के चार से दस तक के श्लोकों में कृष्ण भगवान ने परमात्मा स्वरूप को जल स्वरूप से तुलनात्मक रूप में समझाया है तथा सृष्टि और आत्मा स्वरूप के साथ-साथ अपना भी विस्तार से सम्पूर्ण परिचय दिया है। श्लोक सत्रह में सम्पूर्ण जगत का धाता कहा है। अध्याय तेरह के उन्नीसवें श्लोक में प्रकृति और पुरुष के विषय में बताया है। अध्याय पन्द्रह के तेरहवें श्लोक में सृष्टि रचना का वर्णन किया है।

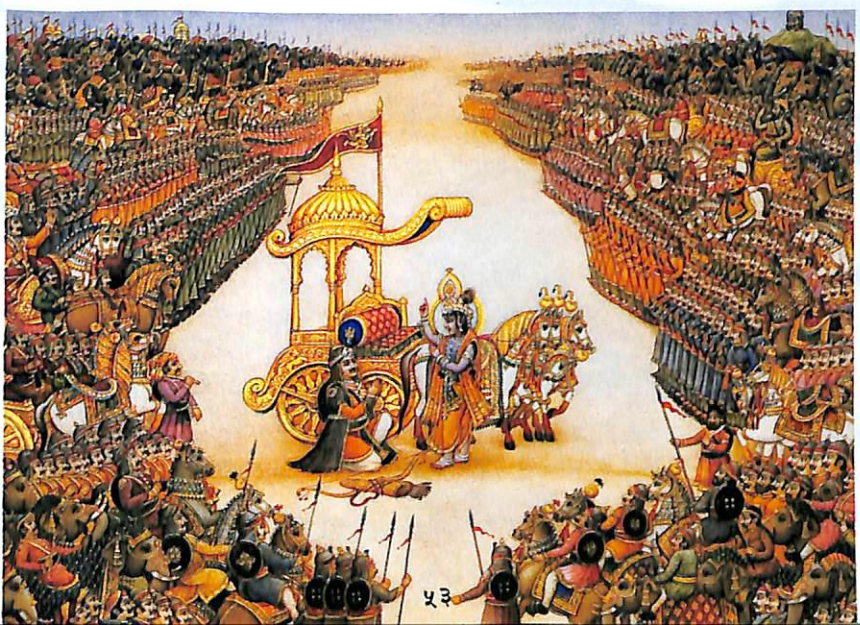

अध्याय - २

श्लोक ७० में कृष्ण भगवान कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा के संबन्ध में उदाहरण स्वरूप समझाने के लिए तुलना नदियों और समुद्र से की गई है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वेस शान्तिमाप्नोन कामकामी ।।

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

अध्याय - ७ में **श्लोक ४-५** में प्रकृति के विषय में बताया गया है।
कृष्ण भगवान कहते हैं कि -

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्ट्रधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार भी - इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को, जिससे यह सम्पूर्ण धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान।

श्लोक ६ में कहा है कि -

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत् का प्रभाव तथा प्रलय हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण हूँ।

श्लोक ८ में कहा है कि -

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।

हे अर्जुन ! मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।।

अथ नवमोध्यायः

श्लोक ४ कहा है कि

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।

कृष्ण भगवान कहते हैं कि - मुझ निराकार परमात्मा से यह जगत् जल से बर्फ के सदृश्य परिपूर्ण है और सब मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तव में मैं इनमें स्थित नहीं हूँ।

श्लोक ५ कहा है कि -

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्ना च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।

वे सब भूत मुझ में स्थित नहीं; किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख कि भूतों का धारण-पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाली भी मेरी आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं हैं।

श्लोक ६ में कहा है कि -

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।

जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरने वाली महान् वायु सदा आकाश में स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जान।

श्लोक ७ में कहा है कि -

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।।

हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

श्लोक ८ में कहा है कि -

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।।

अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बदले बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बार-बार इनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

श्लोक १० में कहा है कि -

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाने कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।

हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्व जगत् को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार-चक्र घूम रहा है।

श्लोक १७ में कहा है कि -

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोकार ऋक्साम यजुरेव च ।।

इस सम्पूर्ण जगत् का धाता अर्थात् धारण करने वाला एवं कर्मों के फल को देने वाला पिता, माता, पितामह, जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ।

श्लोक १९ में कहा है कि -

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।

मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ।
हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ।

अध्याय-१३

श्लोक १९ में कहा है कि -

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।।

प्रकृति और पुरुष - इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से उत्पन्न जान।

अध्याय -१५

श्लोक १३ में कहा है कि -

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।

हे अर्जुन ! मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रस स्वरूप अर्थात् अमृतमय चद्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ।

मनु स्मृति में जल –महत्व और व्यवस्था

भगवान मनु के द्वारा रचित **मनु स्मृति** में सृष्टि रचना से लेकर सामाजिक व्यवस्थाओं को स्थापित करने तक का वर्णन किया है। मनु स्मृति में बारह अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में सामाजिक जीवन पद्धति के लिए व्यवस्थाएं हैं। हमारे समाज के लिए सर्वप्रथम नीति व नियम भगवान् मनु ने ही बनाए। आज हमारे जीवन के लिए भगवान मनु द्वारा बनाए नीति-नियम हमारी परम्पराएं बन गये हैं। वह सामाजिक जीवन में समाहित होकर व्यावहारिक रूप से सतत और स्वत: ही चलती रहती हैं, उन्हें समाज के हर वर्ग का व्यक्ति अपने समाज की परम्पराओं के अनुसार जीता आ रहा है।

मनु स्मृति में जल का महत्व और व्यवस्था सामाजिक जीवन से संबंधित विभिन्न प्रकार से गई थी।

अध्याय एक में सृष्टि की रचना में पंच महाभूतों में जल मुख्य है, यहां तक कि जल को नारायण स्वरूप माना है। अध्याय दो में जल को पवित्र कारक के रूप में बताया है। अध्याय तीन में पितरों की तृप्ति और श्राद्ध आदि के विषय में विस्तार से बताया है। अध्याय चार में गृहस्थ आश्रम में जल के विविध प्रकार के जल के उपयोग के बारे में बताया गया है। अध्याय पांच में कर्मकाण्ड में जल का महत्व बताया है, तो अध्याय छह में वानप्रस्थाश्रम में जल संबंधी विभिन्न प्रकार के महत्व व उपयोग को बताया है।

अध्याय सात में राजधर्म का जल संरक्षण और व्यवस्था के बारे में विभिन्न प्रकार से कार्यों के विषय में बताया गया है। अध्याय आठ में राजा के द्वारा की गई व्यवस्था और कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। अध्याय नौ में सामाजिक व्यवस्था और

राजधर्म में जल से संबंधित नीति नियम बताये गये हैं। अध्याय दस में जल बेचना मना है। अध्याय ग्यारह में दान-यज्ञ-व्रत में जल के महत्व व उपयोग के विषय में नीति नियम बताए गए हैं। अध्याय बारह में कर्मयोग में जल का उपयोग व महत्व के विषय में नीति नियम बताए हैं।

भगवान मनु द्वारा प्रतिपादित की गई व्यवस्थाएं आज तक हमारे दैनिक जीवन का अंग बनकर हमारी सभ्यता और संस्कृति के रूप आदर्श माना जाता रहा है लेकिन समय के साथ-साथ बदलती जीवनशैली, सभ्यता और संस्कृति से जीवन प्राण जल भी अछूता नहीं रहा। आज सामाजिक जीवनशैली में जल का महत्व घटा है, उपभोग प्रवृत्ति बढ़ी है। भारतीय सामाजिक जीवनशैली पश्चिम का अंधानुकरण, आधुनिक जीवनशैली में आर्थिक प्रभाव के बढ़ने से जीवनमूल्यों का भी बाजारीकरण हो गया है। आज बाजार में सामाजिक जीवन के लिए लोक परम्परा की प्रत्येक वस्तु का निर्माण बड़े उद्योगों में हो रहा है। हर चीज बाजार में उपलब्ध है। बढ़ती बाजार की प्रवृत्ति के कारण मनु द्वारा प्रतिपादित व्यवस्थाओं पर आधुनिक समय में प्रतिकूल असर तो पड़ेगा, लेकिन प्रकृति के प्रति बदलते सामाजिक नजरिए का खामियाजा समाज को भी भुगतना होगा।

सृष्टि में मनु स्मृति में भगवान मनु ने महर्षियों की प्रार्थना पर ब्रह्म तत्व का ज्ञान देते हुए कहा है कि -

आसीदितं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतक्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ।।
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यंजयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ।।

पहले यह संसार तम 'अन्धकार रूप प्रकृति' से घिरा था, इससे कुछ भी प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं था, अनुमान करने के योग्य कोई रूप नहीं था। जिससे तर्क द्वारा लक्षण स्थिर कर सके। और सभी ओर अज्ञान और शून्य अवस्था थी। इसके बाद प्रलयावस्था के नाश करने वाले लक्षण सृष्टि के सामर्थ्य से युक्त, स्वयंभू भगवान महाभूतादि 'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु' पंच तत्वों का प्रकाश करते हुए प्रकट हुए।

श्लोक ८ में कहा है कि-

सोऽभिध्याय श्रीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजा ।
अप एव ससर्जाऽऽ दौऽतासु बीजमवासृजत् ।।

भावार्थ है कि - परमात्मा ने अनेक प्राणियों के उत्पन्न करने की इच्छा से अपने शरीर से जल उत्पन्न कर उसमें बीज उत्पन्न किया।

श्लोक ९-१० में कहा है कि -

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुशमप्रभम् ।
तसिकंजज्ञे स्वयं ब्रह्मः सर्वलोकपितामहः ।।
आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ।।

भावार्थ है कि - वह बीज सूर्य के समान तेजस्वी सुवर्ण का अण्डा हो गया, उसमें सभी लोकों के उत्पन्न करने वाले स्वयं ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। नर 'भगवान' से जल की उत्पति हुई है इसलिए जल को नार कहते हैं। वह नार जिसका पहले अयन 'स्थान' हुआ है इसलिए उसका नाम नारायण हुआ।

श्लोक १९-२० में कहा है कि -

तेषानिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यध्ययाद्व्ययम ।।
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवानोति परः परः ।
यो यो यावतियष्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ।।

भावार्थ है कि - इन परम तेजस्वी 'महतत्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा' सात तत्वों के शरीर बनने वाले भागों से यह नश्वर संसार अव्यय से उत्पन्न होता है। इन पंच महाभूतों को 'आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी' के पांचों गुण वायु में शब्द और स्पर्श, इसी प्रकार रूप, रस, गन्ध, उतरोत्तर बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार पंचभूतों के संख्यानुसार ही उनमें गुण की संख्या भी उतनी ही अधिक होती है।

श्लोक २१-२२ में कहा है कि -

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।।
कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभु ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैवसनातनम् ।।

भावार्थ है कि - सृष्टि के आदि में ही ईश्वर ने इन सबके नाम और कर्म भेद के अनुसार ही नियत कर उनकी अलग-अलग संख्याएं बना दीं। उस ब्रह्मा ने देवताओं और सभी जीवों की यथा सूक्ष्म साध्यगणों की सृष्टि की और सनातन यज्ञों को भी बनाया।

निन्द्य राग -द्वेष से रहित, श्रेष्ठ धार्मिक विद्वानों द्वारा ज्ञात धर्म। जल महत्व

श्लोक ५३ में कहा है कि -

उपस्पृश्य द्विजौ नित्यमन्नद्यात्समाहितः ।
भुक्त्वा चोस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ।।

भावार्थ है कि - द्विजाति 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य' नित्य आचमन कर भोजन करे और भोजन के बाद अच्छी तरह आचमन करके छिद्रों 'आंख, कान, नाक' जल से स्पर्श करे।

श्लोक ६१-६२ में कहा है कि -

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ।।
हृद्गाभिः पूजये विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमितः।
वैश्योऽद्भि प्राशिचाभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ।।

भावार्थ है कि - पवित्रता के इच्छुक धार्मिक पुरुष को हमेशा एकान्त में पूर्व अथवा उत्तर में मुंह होकर शीतल और फेन 'गाज' से रहित जल से कहे हुए तीर्थों द्वारा आचमन करना चाहिए। आचमन का जल ब्राह्मण के हृदय तक और क्षत्रिय के कण्ठ तक पहुँचने से ये शुद्ध होते हैं और वैश्य के मुंह में पड़ने से ही तथा शूद्र होठों में लगाने से ही शुद्ध होता है।

श्लोक १०४ में कहा है कि -

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ।।

निर्जन स्थान में जल के समीप जाकर अपनी नित्य क्रियाओं को कर स्थिरचित होकर गायत्री का जप करना चाहिए।

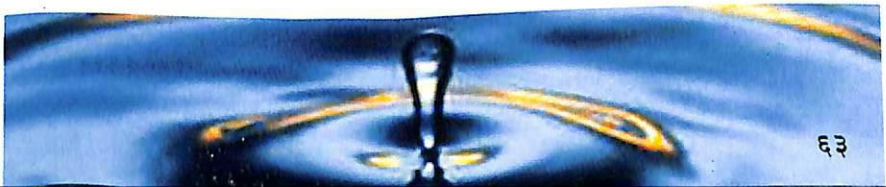

अध्याय ३

गुरु आश्रमों में ब्रह्मचर्य व्रत में जल का उपयोग व महत्व

श्लोक १६३ में कहा है कि -

स्रोतासां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ।

भावार्थ है कि - नदी के बहाव को दूसरी ओर ले जाने वाला अथवा उसके प्रवाह को रोकने वाला, श्राद्धादि कर्म में त्याज्य है।

श्लोक २१४ में कहा है कि -

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ।।

भावार्थ है कि - जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पितृ कर्म के आरम्भ में देवताओं के निमित्त अग्नि में होम करे, इसके बाद दाहिने हाथ में पिण्ड रखने की जगह में जल प्रक्षेप करें।

श्लोक २१५ में कहा है कि -

त्रींस्तु तस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ।
ओदकेनैव विधिना निवपेद्दक्षिणामुखः ।।

भावार्थ है कि - इसके बाद एकाग्रचित होकर होम से बचे हुए अन्न के तीन पिण्ड बनाएं, उन पिण्डों को उदक 'जल' से विधिपूर्वक अभिषिक्त कर दक्षिण की ओर मुंह करें, इन पिण्डों को इनके साथ में रखें।

श्लोक २१८ में कहा कि -

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिन्घ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः।।

भावार्थ है कि - पिण्डदान से पहले भूमि पर जल छोड़ने के पश्चात् बचे हुए जल को पुनः प्रत्येक पिण्ड के समीप छोड़ें और उन पिण्डों को जिस क्रम से जल दिया हो उसी क्रम से एक-एक को सूंघें।

श्लोक २७१ में कहा है कि -

संवत्सरं तु गव्येन पयासेन च ।
वार्ध्रीणस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशावार्षिकी ।।

भावार्थ है कि - गाय के दूध अथवा पायस 'खीर' से एक वर्ष तक और बार्धीणम 'जल पीते समय जिस बकरे का कान जल में भीगे और श्वेत वर्ण का हो' के मांस से बारह वर्ष तक पितरों की तृप्ति होती है।

श्लोक २८३ में कहा है कि -

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तम ।
तयैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ।।

भावार्थ है कि - ब्राह्मण स्नान करके जो जल से पितृ तर्पण करता है, उसी से वह नित्य श्राद्ध क्रिया का फल पाता है।

अध्याय ४

गृहस्थ आश्रम जल का उपयोग व महत्व

श्लोक ५९ में कहा है कि -

न वारयेद्गा धयन्तीं न चाचक्षीत कास्यचित् ।

भावार्थ है कि - पानी पीती हुई गौ को न रोकें और दूसरे का दाना घास खाती हो तो उससे न कहें।

श्लोक १२९ में कहा है कि -

न स्नानमाचरेद्भक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्त्रं नाविज्ञाते जलाशये।।

भावार्थ है कि - भोजन करके स्नान न करें , रोगी स्नान न करे, रात के दूसरे-तीसरे पहर में स्नान न करें, बहुत कपड़े साथ लेकर स्नान न करें। बिना जाने हुए जलाशय में भी स्नान न करें।

श्लोक २०१ में कहा है कि -

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ।
निपातकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ।।

भावार्थ है कि - दूसरे के बनाए हुए जलाशय में कभी स्नान न करें। स्नान करने से स्नानकर्ता पुष्कर खुदवाने वाले के पापों के अंश चतुर्थ भाग का भागी होता है। **यदि दूसरे के बनाए हुए जलाशय में स्नान करने का अवसर आ पड़े तो मिट्टी के पांच लोटे निकालकर स्नान करें। याज्ञवल्क्य जी ने कहा है।**

श्लोक २२९ में कहा है कि -

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयय्यमन्नदः ।

भावार्थ है कि - प्यासे को पानी देने वाला तृप्ति को पाता है। भूखे को अन्न देने वाला अक्षय सुख को पाता है।

अध्याय ५

कर्मकाण्ड में जल का उपयोग व महत्व

श्लोक ६३ में कहा है कि -

निरस्य तु पुमाञ्छुक्रमुपुस्पृश्यैव शुद्धयति ।

भावार्थ है कि - इच्छा से वीर्य स्खलन कर पुरुष स्नान करने से शुद्ध होता है।

श्लोक ६६ में कहा है कि -

रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ।।

भावार्थ है कि - रजस्वला साध्वी स्त्री रजनिवृत्ति होने पर स्नान से शुद्ध होती है।

श्लोक ८५ में कहा है कि -

शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्धयति ।

भावार्थ है कि - शव 'मद्रा' के स्पर्शकर्ता को छूकर स्नान मात्र से ही शुद्धि होती है।

श्लोक ८७ में कहा है कि-

वारं स्पृष्ट्वास्थि ससेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्धयति ।

भावार्थ है कि - मनुष्य की मज्जा सहित हड्डी छूकर ब्राह्मण स्नान करने से शुद्ध होता है

श्लोक ८८ में कहा है कि -

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्धयति ।।

भावार्थ है कि - बह्मचारी अपने व्रत की समाप्तिपर्यन्त प्रेत की उदक क्रिया न करे। ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर वह प्रेत को जलांजलि देकर तीन रात में शुद्ध होता है।

श्लोक १०३ में कहा है कि-

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमत्रातिमेव च ।
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं वृतं प्राश्य निशुद्धयति ।

भावार्थ है कि - सपिण्ड या असपिण्ड मृतक के पीछे-पीछे कोई अपनी इच्छा से जाएं तो सचैल स्नान के बाद अग्नि का स्पर्श और घी खा लेने से शुद्ध हो जाता है।

श्लोक १०९ में कहा है कि -

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्तिः मनः सत्येन शुद्धयति ।

भावार्थ है कि - शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

श्लोक १११-११२ में कहा है कि -

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्मयस्य च ।
भस्मानादिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभीः ।।
निर्लेपं काञ्जनं माण्डमद्भिरेव विशुद्धयति ।
अब्जमम्ममयं चैव राजतं चानुपरकृतम् ।।

भावार्थ है कि - सुवर्ण आदि धातुओं, मणियों और पत्थर के बने सब पदार्थों की शुद्धि भस्म जल और मिट्टी से होती है, ऐसा पण्डितों ने कहा है। सोने का बर्तन, बिना कलई के जल से उत्पन्न होने वाला शंख और मूंगा आदि पत्थरों के बने पात्र चाँदी के सादे बर्तन केवल पानी से ही शुद्ध होते हैं।

श्लोक ११३-११४ में कहा है कि -

अपामग्नेश्च संयोगाद्धेमं रौप्यं च निर्वभो ।
तत्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ।।
ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षारोम्लोदकवारिभिः।।

भावार्थ है कि - अग्नि और जल के संयोग से सोना और चांदी उत्पन्न होते हैं इसलिए दोनों की शुद्धि अपने उत्पादक 'जल और अग्नि' के द्वारा ही श्रेष्ठ होती है। तांबा, लोहा, कांसा, पीतल, रांग और शीशा इनकी यथायोग्य क्षार, खटाई और जल से शुद्धि करनी चाहिए।

श्लोक १२८ में कहा है कि -

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ।।

भावार्थ है कि - धरती पर जल यदि अपवित्र वस्तुओं से मिला हुआ न हो, सुगन्ध वर्ण और रस से युक्त हो और जो इतना हो कि गाय अपनी प्यास बुझा सके तो इसे शुद्ध समझना चाहिए।

श्लोक १३४ में कहा है कि -

दैहिकानां मलानां य शुद्धिषु द्वादशस्वपि ।

भावार्थ है कि - मलमूत्र त्याग करने पर देह से उत्पन्न बाहर मलों की शुद्धि के लिए प्रयोजन के अनुसार मिट्टी और जल लेना चाहिए।

श्लोक १३५-१३६ में कहा है कि -

वसा शुक्रमसृङ्-मज्जा मूत्राविट्घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः।।
एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदुः शुद्धिमभीप्सता ।।

चर्बी, वीर्य, लहू, मज्जा, पेशाब, विष्ठा, नाक-कान के मल, कफ, आँसू, आँखों की कीच और पसीना ये मनुष्य के बारह दैहिक मल हैं। शुद्धि चाहने वाले को चाहिए कि लिंग में एक बार, मलद्वार में तीन बार, बायें हाथ में दस बार और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाकर जल से धोयें।

अध्याय ६

वानप्रस्थाश्रम में जल का उपयोग व महत्व

श्लोक ६ में कहा है कि -

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ।
जटाश्च विभृयान्नित्यंश्मश्रुलोमनखानि च ।।

भावार्थ है कि - वानप्रस्थ होने पर वन में मुनियों के अन्न 'नीवार आदि' से अथवा शाक, फल, मूलों से विधिपूर्वक पंच महायज्ञों को करें। मृगचर्म या वल्कल पहने प्रातः और सायंकाल स्नान करें। जटा, दाढ़ी, मूंछ और नख इनको नित्य धारण करें।

श्लोक ७ में कहा है कि -

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलि भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरचैयेदाश्रमागतान् ।।

भावार्थ है कि - आश्रम में जो विहित भोजन हो इसी में से यथाशक्ति बलि और भिक्षा दें। आश्रम में आए अतिथि को जल, मूल, फल की भिक्षा से सत्कार करें।

श्लोक २२ में कहा है कि-

भूमौ विपरिवर्बेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ।।

भावार्थ है कि - भूमि पर लोट-पोट करता हुआ पड़ा रहे। अथवा अपने स्थान पर और आसन पर कुछ काल खड़ा रहे और कुछ काल बैठे तथा त्रिकाल स्नान करे।

श्लोक ५३ में कहा कि -

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ।।

भावार्थ है कि - संन्यासियों के भिक्षापात्र धातु के न हों और न उसमें छिद्र ही हों। इन पात्रों की शुद्धि यज्ञ के चमसों 'हवन के उपकरणों' की भांति जल से ही होती है।

श्लोक ६७ में कहा है कि -

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ।।

भावार्थ है कि - यद्यपि निर्मली का फल जल को स्वच्छ करने वाला होता है किन्तु उसका नाम लेने से ही जल स्वच्छ नहीं होता है।

अध्याय ७

राजधर्मों में जल का उपयोग व महत्व

श्लोक ७५-७६ में कहा है कि-

तत्स्यादायुधसंपन्न धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ।।
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ।।

भावार्थ है कि - वह किला अस्त्र-शस्त्र, धन-धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी, यन्त्र तृण और जल से परिपूर्ण रहना चाहिए। ऐसे दुर्ग के बीच में पर्याप्त खाई और सब प्रकार ऋतुओं के फल-फूल और निर्मल जल से भरे हुए कुओं और बावड़ियों से युक्त अपना राजभवन बनवाएं।

श्लोक १९५ में कहा है कि -

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
दूषयेच्चारस्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ।।

भावार्थ है कि - शत्रु के नगर के चारों ओर घेरा डाल दें, उसके राज्य को हर तरफ से पीड़ा पहुंचावें। निरन्तर वहां का तृण, अन्न, जल और ईंधन नष्ट-भ्रष्ट करते रहें।

श्लोक १९६ में कहा है कि -

भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा ।

भावार्थ है कि - शत्रु के काम आने वाले तड़ागादि जलाशयों का नाश करें, किले की दीवार को तोड़-फोड़ डालें, खाई को मिट्टी से भर दें।

राजसभा में राजा के कर्तव्यों में जल का महत्व।

श्लोक ८५-८६ में कहा है कि -

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तास्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरषूरुषः ।।
द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ।।

भावार्थ है कि - पाप करने वाले समझते हैं कि हमें कोई नहीं देखता है, परन्तु देवता और उनके अन्तर्गत आत्मास्वरूप पुरुष उन पापों को देखते रहते हैं। आकाश, भूमि, जल, हृदय, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों संध्याएं और धर्म, ये सब प्राणियों के सब लोक जानते हैं।

श्लोक २६२ में कहा है कि -

क्षेत्रकूपतड़ागानामारामस्य गृहस्य च ।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ।।

भावार्थ है कि - खेत, कुआं, तालाब, मकान इन सबकी सीमा का विवाद हो तो राजा गांव के रहने वाले गवाहों से पूछकर सीमा का निश्चय करे।

श्लोक २६४ में कहा है कि -

गृहं तड़ागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पंच दण्डयः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ।।

भावार्थ है कि - दूसरे के घर, पोखरा,बाग और खेत ले ले तो राजा उस पर कोई भय दिखाकर दंड करे और जाने बिना ले तो दो सौ पण दंड करे।

श्लोक ३१९ में कहा है कि -

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिद्याच्च यः प्रपाम् ।
स दंडं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत्।।

भावार्थ है कि - जो कुएं पर की रस्सी या राहियों के पानी पीने का पात्र या घड़ा चुराता है या प्याऊ को नष्ट करता है, राजा उसे एक माशा सोना दंड करे।

अध्याय ९

सामाजिक व्यवस्था और राजधर्म में जल का उपयोग व महत्व

श्लोक ५४ में कहा है कि -

ओधवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ।
क्षेत्रकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ।।

भावार्थ है कि - जल और वायु के प्रवाहों में आया हुआ बीज भी उसी का होता है जिसके खेत में वह जमता है न कि उसका जिसके कि खेत से बहकर आया है।

श्लोक २७९ में कहा है कि -

तड़ागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेत वा ।
यद्वापि प्रतिसंकुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ।।

भावार्थ है कि - तालाब को किसी प्रकार से नष्ट करने वाले जल में डूबोकर मार डाले अथवा कोई कड़ा दण्ड देकर मार डाले। यदि वह नष्ट की हुई वस्तु को दुरुस्त कर दे तो उसे एक उत्तम साहस का दण्ड दे।

श्लोक २८१ में कहा है कि -

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ।
आगमं वाप्यपां भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ।।

भावार्थ है कि - जो सर्वसाधारण के उपकारार्थ बने हुए तालाब के जल को खराब करे या ले लेवे अथवा तालाब में डाले, आगे के रास्ते को बन्द करे तो राजा उसे प्रथम साहस का दण्ड दे।

श्लोक ३०५ में कहा कि -

अष्टो मासान्यथादित्यस्तोयं हरित रश्मिभिः ।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ।।

भावार्थ है कि - जिस प्रकार आठ महीने तक अपनी किरणों से जल को हरता है उसी प्रकार राजा अपने राष्ट्र से कर ले, इसको राजा के लिए सूर्य व्रत कहा है।

श्लोक ३२१ में कहा है कि -

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।

भावार्थ है कि - जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है।

अध्याय १०

वेदों के अध्ययन और जन उपदेश में जल का महत्व

श्लोक ८८ में कहा है कि -

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धाश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।।

भावार्थ है कि - पानी, हथियार, विष, मांस, सोमरस, सभी प्रकार के सुगंधित पदार्थ, दूध, दही, तेल, मधु, गुड़, और कुश भी बेचना मना है।

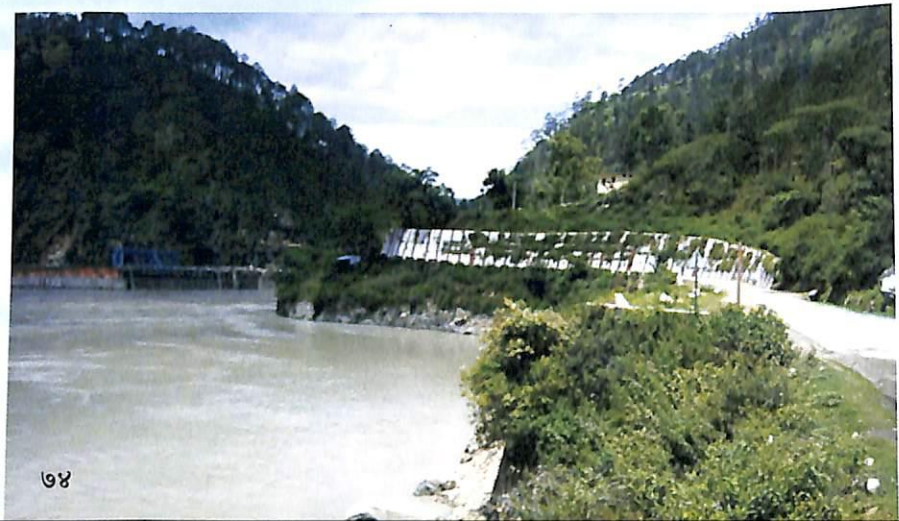

अध्याय ११

दान-यज्ञ व्रत में जल का उपयोग व महत्व।

श्लोक ९१ में कहा है कि -

गोमूत्रमग्निवर्ण वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वाऽमरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ।।

भावार्थ है कि - मदिरापान करने वाले ब्राह्मण को प्रायश्चित के लिए गोमूत्र, जल, गाय का दूध, गौ घृत और गाय के गोबर का रस इसमें से किसी एक चीज को आग के समान तप्त करके मरण-पर्यंत पीता रहे।

श्लोक १४९ में कहा है कि -

ब्राह्मणस्तु सुरापानस्य गन्धमाघ्राय सोमपः।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्धयति ।।

भावार्थ है कि - सोम पीने वाला ब्राह्मण यदि सुरा पीने वाले के मुख की गन्ध को सूंघ ले तो वह जल के भीतर तीन बार प्राणायाम करके घी चाटकर शुद्ध होता है।

श्लोक १६३ में कहा है कि -

कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ।।

भावार्थ है कि - कुआं, बावड़ी का जल चुराने वाला चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है।

श्लोक १८६-१८७ में कहा है कि -

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम्।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ।।

भावार्थ है कि - पतित के प्रायश्चित कर लेने पर उसके सपिंड बांधवगण उसके साथ पवित्र जलाशय में स्नान कर जल से पूर्ण नया घड़ा पानी में फेंक दें। घड़े को जल में फेंक कर अपने घर में प्रवेश कर सभी भाई-बन्धुओं के साथ जैसा पहले व्यवहार था वैसा ही करें। यही विधि पवित्र स्त्रियों के साथ भी करनी चाहिए।

श्लोक २०२ में कहा है कि -

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च ।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्धयति ।।

भावार्थ है कि - अत्यन्त वेग से पीड़ित होकर पानी के बिना या पानी में मलमूत्र का त्याग करें तो गांव के बाहर नदी वगैरह में सचैल्य 'वस्त्रा दि पहने हुए ही' स्नान करके गौ का स्पर्श करके शुद्ध होता है।

श्लोक २१४ में कहा है कि -

तप्त कृच्छ् चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिलेदुष्णान्सकृल्स्नायी समाहितः ।।

भावार्थ है कि - ब्राह्मण नित्य एक बार स्नान कर एकाग्रचित्त होकर प्रत्येक तीन-तीन दिन क्रम से गरम जल, गरम दूध, गरम घी और वायु का सेवन करे। इसी को तप्तकृच्छ् व्रत कहते हैं।

श्लोक २५५ में कहा है कि -

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भक्षभुक् ।।

भावार्थ है कि - पापी मनुष्य पाप से मुक्त होने के लिए ''इन्द्र मित्रं वरुणमग्निम्'' इन सात ऋचाओं का छः मास तक जप करे और जल में मलमूत्रादि करने वाला एक मास पर्यन्त भिक्षा का अन्न खाकर शुद्ध हो जाता है।

अध्याय १२

कर्मयोग में जल का उपयोग व महत्व।

श्लोक ५७ में कहा है कि -

लूता हसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रसः ।।

भावार्थ है कि - स्वर्ण को चुराने वाला ब्राह्मण, मच्छर, सांप, गिरगिट, पक्षी, जल में रहने वाले ग्रह और हिंसा करने वाले पिशाचों की योनि में उत्पन्न होते हैं।

चाणक्य नीति में जल दृष्टि और व्यवस्था

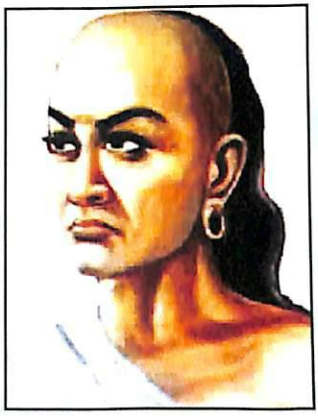

शिरोमणि आचार्य चाणक्य महाविद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, प्रकाण्ड पंडित, विधि-विधान के निर्माता और नीतिकार थे। उन्होंने अपने जीवन काल में भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए देश, काल और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कई महान् ग्रंथों की रचना की। राजतंत्र, सामाजिक, आर्थिक, नीतिगत विकास के लिए व्यवहारिकता को ध्यान में रखते हुए नीति निर्धारण की व्यवस्थाएं की गई थीं। आचार्य चाणक्य को विविध नामों से जाना जाता था। चाणक्य भारत के विश्व स्तर के अर्थशास्त्र के विद्वान के रूप में कौटिल्य के नाम से विख्यात हुए जिसमें राजतंत्र से लेकर समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए और सामाजिक जीवन के साथ व्यवस्थाएं थीं।

चाणक्य ने सामाजिक व्यवस्था के नीति नियमों में मनु द्वारा की गई व्यवस्थाओं को भी समाहित किया था जिसे चाणक्य-नीति के रूप में प्रतिपादित किया गया। चाणक्य-नीति के अध्यायों में जल दृष्टि और व्यवस्था के विषय में बताया गया है कि जहां सिंचाई और जल की आपूर्ति के लिए नदियां न हों, ऐसे स्थान पर बसना उचित नहीं है। बादलों से बरसते जल को शुद्ध माना गया है। वेग से बहती नदियां स्वच्छ मानी गई हैं। तड़ाग के पानी को बदलते रहना चाहिए। भोजन के समय जल के उपयोग को दवाई और भोजन के बाद विष रूप में देखा है। भूमिगत जल को भी शुद्ध बताया है। जल स्रोतों को नुकसान पहुंचाने वालों को म्लेच्छ कहा गया है। जल को पृथ्वी का मूल्यवान पदार्थ बताया है। अन्न और जल को अप्रतिम दान माना है। अशुद्ध जल रोगों का कारण होता है। उक्त व्यवस्थाओं को नीतिगत श्लोकों के द्वारा समाज को सजग किया। आज के समय में भी चाणक्य के नीति-नियम भारतीय जन-जीवन में देखने को मिलते हैं।

प्रथम अध्याय

नौवें सूत्र में कहा है कि -

धनिकः श्रोत्रियौ राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ।।

भावार्थ है कि - जिस देश में धनी-मानी व्यापारी, कर्मकाण्ड को मानने वाले पुरोहित, ब्राह्मण, शासन व्यवस्था में निपुण राजा, सिंचाई अथवा जल की आपूर्ति के लिए नदियां और रोगों से रक्षा के लिए वैद्य आदि चिकित्सक न हों, वहां व्यक्ति को एक दिन के लिए भी रहना उचित नहीं।

पांचवां अध्याय

सत्रहवें सूत्र में कहा है कि - **नास्ति मेघसमं तोयं**

बादलों से बरसते हुए जल के समान कोई दूसरा स्वच्छ पानी नहीं होता।

षष्ठ अध्याय

तीसरे सूत्र में कहा है कि - **नदी वेगेन शुद्धयति**

जो नदियां धीरे-धीरे बहती हैं, इनका पानी सदैव अशुद्ध और गंदा दिखाई देता है, वेग से बहने वाली नदियां स्वतः स्वच्छ हो जाती हैं।

सातवां अध्याय

चौदहवें सूत्र में कहा है कि - **तड़ागोदर संस्थानां परिस्राव इवाम्भसाम्**

बहुत समय से पानी से भरे हुए तालाब को सड़ांध और कीचड़ से बचाने के लिये आवश्यक है कि इसके पानी को बदला जाये।

आठवां अध्याय

सातवें सूत्र में कहा है कि -

अजीर्णेभेषजं वारि, जीर्णेवारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषं भवेत्।।

बदहजमी, अजीर्ण-अपच हो जाने पर जल का सेवन दवाई का काम करता है। भोजन के बीच में पानी अमृत सदृश होता है, भूख बढ़ती है, भोजन रुचिकर लगता है, पचता है, किन्तु भोजन के बाद जल पीने से वह विष के समान हानिकारक होता है। जल को दवाई और विष के रूप में देखा है।

सत्रहवें सूत्र में कहा है कि - **शुद्धं भूमिगतं तोयं**

पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाला जल शुद्ध-पवित्र होता है।

ग्यारहवां अध्याय

सोलहवें सूत्र कहा है कि-

वापी कूप तडागानामाराम-सुर-वेश्मनाम् ।
उच्छेदने निराऽऽशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ।।

बावड़ी, कूप, तालाब, बाग, और देव मन्दिरों को तोड़ने-फोड़ने में संकोच न करने वाला ब्राह्मण अपने निकृष्ट कर्मों के कारण म्लेच्छ कहलाता है।

चौदहवां अध्याय

प्रथम सूत्र में कहा है कि -

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।।

जो सच्चे अर्थों में रत्न अर्थात मूल्यवान पदार्थ हैं; ये हैं - जल, अन्न और मधुर तथा हितकारी वचन।

सत्रहवां अध्याय

सातवें सूत्र में कहा है कि - **नाऽन्नोदकसमं दानं कहा**

कि अन्न और जल का दान अप्रतिम दान है। भूखे को भोजन करा देना और प्यासे को जल दे देने जैसा दूसरा कोई दान नहीं है।

दसवें सूत्र में कहा कि -

पादशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव चं।
श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।।

पैरों के धोने से बचा, पीने से बचा हुआ अर्थात जूठा जल और संध्या करने से बचा हुआ जल कुत्ते के मूत्र के समान अग्राह्य है। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार के जल का सेवन कर लेता है तो उसे अपनी शुद्धि के लिए चान्द्रायण-व्रत करना चाहिए। अशुद्ध जल रोगों का कारण होता है।

❑❑❑

वर्तमान समय में पर्यावरणीय दृष्टि और जल संरक्षण व्यवस्थाएं

वर्तमान केन्द्रीय सरकार देश में बढ़ती जल समस्या के प्रति संवेदनशील दिखाई देती है। राज्य सरकारें भी अपने पानी के हक की लड़ाई लड़ रही हैं। समाज और सरकारें अपने-अपने पानी के हक के लिए आगे आए हैं। पानी के संरक्षण का भाव समाज, सरकार और सरकार के कार्यों में झलकता है। दूसरी ओर हमारे पानी की मालिक दूसरे देशों की बड़ी कम्पनियां बन रही हैं। वह अपना मुनाफा धरती के नीचे और धरती के ऊपर बहने वाले पानी में देखती हैं। वर्षा के पानी पर राज्य सरकारें अपना हक मानती हैं और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सहेज कर रखने का भरसक प्रयास कर रही हैं।

हमारे देश में प्राकृतिक संपदा के संरक्षण के लिए कानून तो बने हुए हैं। लेकिन इतने बड़े देश में उनकी पालना करने-कराने वालों का अकाल है। जनता को कुशल और संवेदनशील नेतृत्व चाहिए जो प्राकृतिक संपदा के संरक्षण में सहयोगी बने। पानी भी प्राकृतिक संपदा का एक अंग है। इसे बचाने के लिए और उपभोग के लिए जनता को जागरूक बनाए रखना कुशल नेतृत्व का अहम कार्य है। उसके लिए व्यवस्था ऐसी सुनिश्चित की जाए कि जनता जनार्दन सहज रूप से स्वीकार करते हुए अपनाती रहे। उसकी उपभोग प्रवृत्ति में लालच और दोहन का भाव न बढ़े।

बल्कि संरक्षण और संवर्द्धन का भाव हमेशा पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता रहे। ऐसी व्यवस्था से ही हमारी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

देश के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण देश में बढ़ती जन समस्याओं को देखते हुए हमारी न्याय व्यवस्था ने समय-समय पर अहम भूमिका निभाई है। चाहे वह जंगल संरक्षण के सवाल हों या पर्यावरण के सवाल हों, उसने अपना दृष्टिकोण देश की जनता के सामने रखा है। उसकी पालना के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारों को भी पाबन्द किया है। जबकि सरकार ही कानून बनाती है और सरकार ही उन कानूनों का उल्लंघन करती है। जनता केवल देखती है और अपने नेतृत्व का अनुसरण करती है। इससे सामाजिक जीवनशैली और व्यवस्थाएं हमेशा बिगड़ती हैं। ऐसी स्थिति में न्याय व्यवस्था का कार्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। वह सचेत रह कर अपने निर्णय देती है और उसकी पालना के लिए सरकार व जनता को पाबन्द करते हुए दण्ड व्यवस्था को भी सख्ती से लागू करती है।

देश में घटते प्राकृतिक जल स्रोतों के कारण बढ़ती जन समस्याओं को देखते हुए देश में न्याय व्यवस्था की सर्वोच्च संस्था उच्चतम न्यायालय ने प्रकृति की रक्षा के लिए एक अहम फैसला किया। माननीय उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था में हमारी प्राचीन जल संस्कृति की रक्षा निहित है। जिससे देश में बढ़ती जल समस्या के समाधान हेतु सरकार और समाज को आगे आकर कार्य करना होगा। तभी देश के लिए बढ़ती समस्या का समाधान समय रहते हो सकता है।

विषय - मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या-४७८७/२००१, हिंचलाला तिवारी बनाम कमलादेवी आदि में पारित आदेश दिनांक २५.७.२००१ का अनुपालन किए जाने सम्बन्धी।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपील संख्या ४७८७/२००१, हिंचलाल तिवारी बनाम कमला देवी आदि में निर्णय व्यवस्था इस प्रकार है।

मा. उच्चतम न्यायालय का
निर्णय/प्राथमिकता
प्रेषक,
अध्यक्ष,
राजस्व परिषद्, उ.प्र.
लखनऊ।
सेवा में,

१. समस्त मण्डलायुक्त, उत्तर प्रदेश।
२. समस्त जिलाधिकारी, उत्तर प्रदेश।

पत्र संख्या-जी-८६५/५-९ आर/२००१ दिनांक- २४ जनवरी, २००२

विषय - मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या-४७८७/२००१, हिंचलाला तिवारी बनाम कमलादेवी आदि में पारित आदेश दिनांक २५.७.२००१ का अनुपालन किए जाने सम्बन्धी।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक शासनादेश संख्या-३१३५/१-२-२००१-रा-२, दिनांक ०८ अक्टूबर, २००१ की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए आपसे अपेक्षा की जाती है कि ग्राम उगापुर, तालुका आसनांव जिला संतरविदास नगर से संबंधित तालाबों हेतु सार्वजनिक उपयोग की भूमि के समतलीकरण के परिणामस्वरूप अवैधानिक रूप से आवासीय प्रयोजन हेतु अवैध रूप से किए गए आवंटन को मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णय दिनांक २५.७.२००१ में यह उल्लेख करते हुए कि तालाबों को विशेष ध्यान देकर तालाब के रूप में ही बनाये रखना चाहिए एवं उसका विकास एवं सौन्दर्यीकरण किया जाना चाहिए, जिससे जनता इसका उपयोग कर सके। अग्रेतर यह भी उल्लेख किया गया है कि जंगल, तालाब, पोखर, पठार तथा पहाड़ आदि समाज की बहुमूल्य धरोहर हैं और उनका अनुरक्षण पर्यावरणिक संतुलन बनाये रखने हेतु आवश्यक है। उक्त मामले में तालाबों के समतलीकरण के परिणामस्वरूप किए गए आवासीय पट्टों को निरस्त किए जाने तथा संबंधित आवंटियों द्वारा स्वयं उस पर निर्मित भवन ६ माह के भीतर ध्वस्त

करके तालाब की भूमि का कब्जा गांवसभा को दिए जाने के आदेश देते हुए निर्धारित अवधि के भीतर आवंटियों द्वारा ऐसा न करने पर प्रशासन को उक्त आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के निर्देश दिए गए हैं।

मा. उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त महत्वपूर्ण निर्णय से स्वत: विदित होता है कि आवासीय प्रयोजन से भिन्न किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजन की भूमि, चाहे वह तालाब/पोखर, रास्ता/चकरोड, खलिहान आदि के लिए आरक्षित भूमि को आवासीय प्रयोजन हेतु आबादी की श्रेणी में परिवर्तित किया जाना अत्यन्त आपत्तिजनक है, क्योंकि इस प्रकार की अवैधानिक कार्यवाही के फलस्वरूप एक ओर पर्यावरणिक संतुलन (Ecological Balance) बनाये रखने में कठिनाई होती है वहीं दूसरी ओर जल संरक्षण, पशुओं के चारे तथा पेयजल आदि जैसी विकट समस्याएं भी जन्म लेने लगती हैं, जल के स्रोत संकुचित होने लगते हैं एवं भू-जल स्तर बनाये रखना सम्भव नहीं हो पाता है, जिसका सीधा कुप्रभाव मानव एवं पशु पर पड़ता है।

तालाब/पोखर के अनुरक्षण के संबंध में पूर्व में परिषदादेश संख्या-२७५१/जी-५-११ डी/९८ दिनांक १३ जून २००१ निर्गत किया जा चुका है।

मा. उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के परिप्रेक्ष्य में परिषद की यह अपेक्षा है कि राजस्व विभाग के अधिकारी शीतकालीन भ्रमण के दौरान सार्वजनिक भूमि के दुरुपयोग के विषय में जानकारी करें तथा मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार कार्यवाही सुनिश्चित करें। मण्डलायुक्त कृपया इस संबंध में जिलाधिकारियों से समयानुसार सूचना एकत्र कर लें तथा उसे संकलित करके अपनी आख्या राजस्व परिषद को एफ.डी.ओ. में शामिल कर भेजते रहें।

मा. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में यह भी अपेक्षा की है कि इस प्रकार के सार्वजनिक स्थानों की सुरक्षा की जाये तथा राज्य सरकार एवं राजस्व विभाग इनका विकास करते रहें ताकि ऐसा होने के कारण पर्यावरणिक संतुलन (Ecological Balance) बनाये रखने में कोई कठिनाई न होने पाये । कृपया राजस्व विभाग

आवश्यकतानुसार राहत कार्य के अन्तर्गत एवं पंचायती राज विभाग की योजनाओं के अन्तर्गत इन तालाबों की मेड़ को ऊंचा करने तथा गहरा करने की कार्यवाही सुनिश्चित करें ताकि इनकी सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। अधिक से अधिक संख्या में यदि सार्वजनिक भूमि पर वृक्ष लगाये जायें तो उससे भी खाली भूमि सुरक्षित रहेगी। कृपया इस संबंध में विभिन्न पंचायती राज संस्थानों, जिला परिषद, क्षेत्र समिति, डी.आर.डी.ए. इत्यादि को उनकी बैठकों में अवगत करायें। इस परिषदादेश एवं मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को कृपया संबंधित अधिकारियों को परिचालित करायें तथा इसका व्यापक प्रचार भी करायें। विभिन्न अधिवक्ता संघों को भी भेजा जाये।

परिषद की राय में धारा २१८ भू-राजस्व अधिनियम के अन्तर्गत जिलाधिकारी एवं आयुक्त के स्तर पर स्वयंमेव निगरानी के रूप में अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है अथवा डी.जी.सी. राजस्व के माध्यम से निगरानी का प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

परिषदादेश के साथ मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के उद्धरण की छाया प्रतिलिपि एवं इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा निर्गत किए गए उपरोक्त शासनादेश दिनांक ०८-१०-२००१ की छाया प्रति भी संलग्न की जा रही है।

संलग्नक-उपरोक्त।

भवदीय,
आदित्य कुमार रस्तोगी
अध्यक्ष

We want to aware you regarding the historical decision of Supreme Court of India given on 25-7-2001, which ensures the restoration and conservation of forests, tanks, ponds, hillocks and mountains etc., by declaring them as nature's bounty.

The Revenue Council of State U.P. issued the above letter to the District Magistrates and Commissioners for the follow up of the decision. You too can use this decision and letter for the conservation of your community natural resources. It will be highly appreciated if you would find it justified to send a copy of the Supreme Court decision to the concerned authorities of your region. We believe your efforts will ensure the use of the decision for this noble cause.

For further details on the decision you can refer to :
"Book of Supreme Court Cases 2001" 6SSC Pg No 496-501

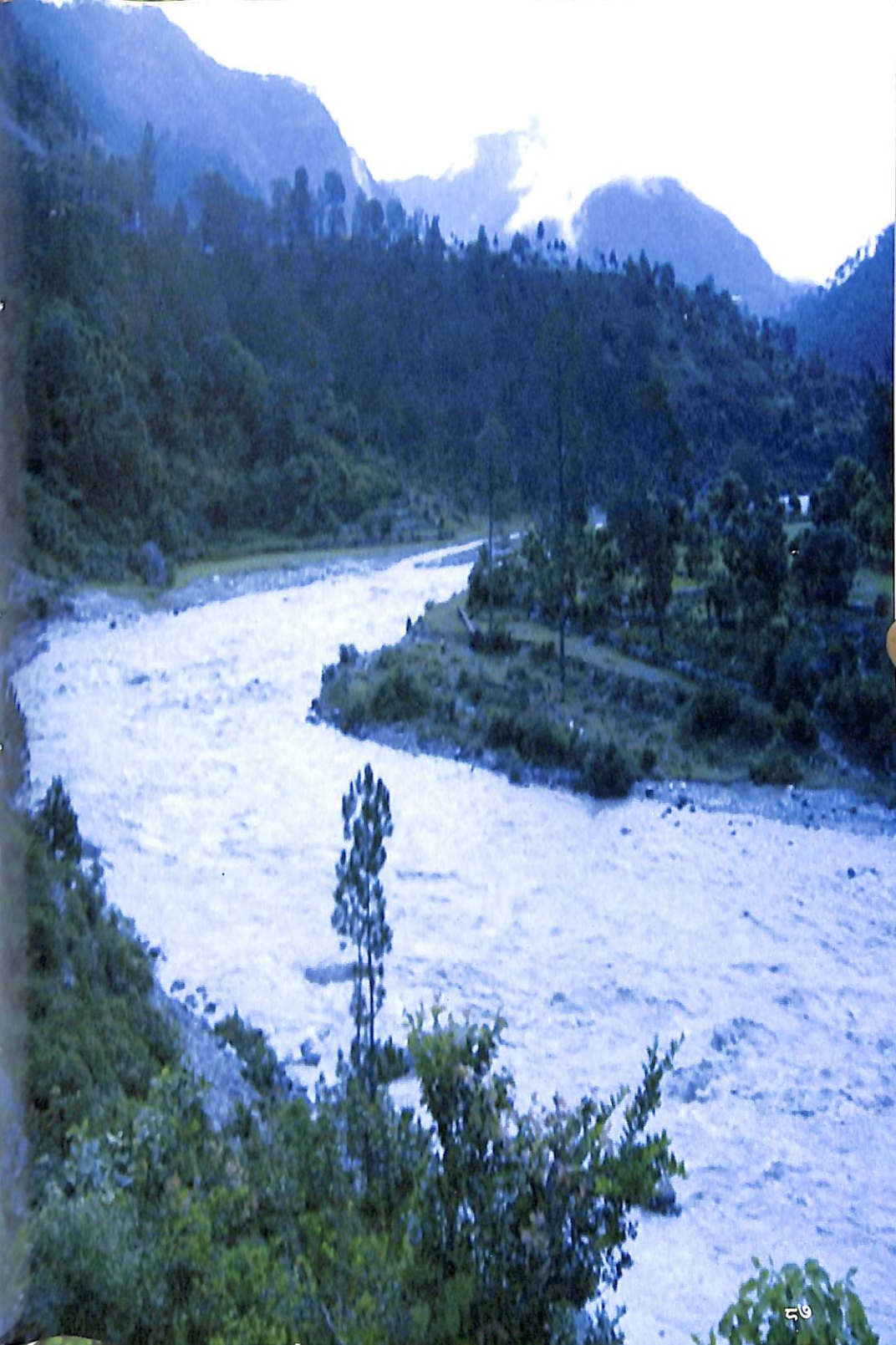

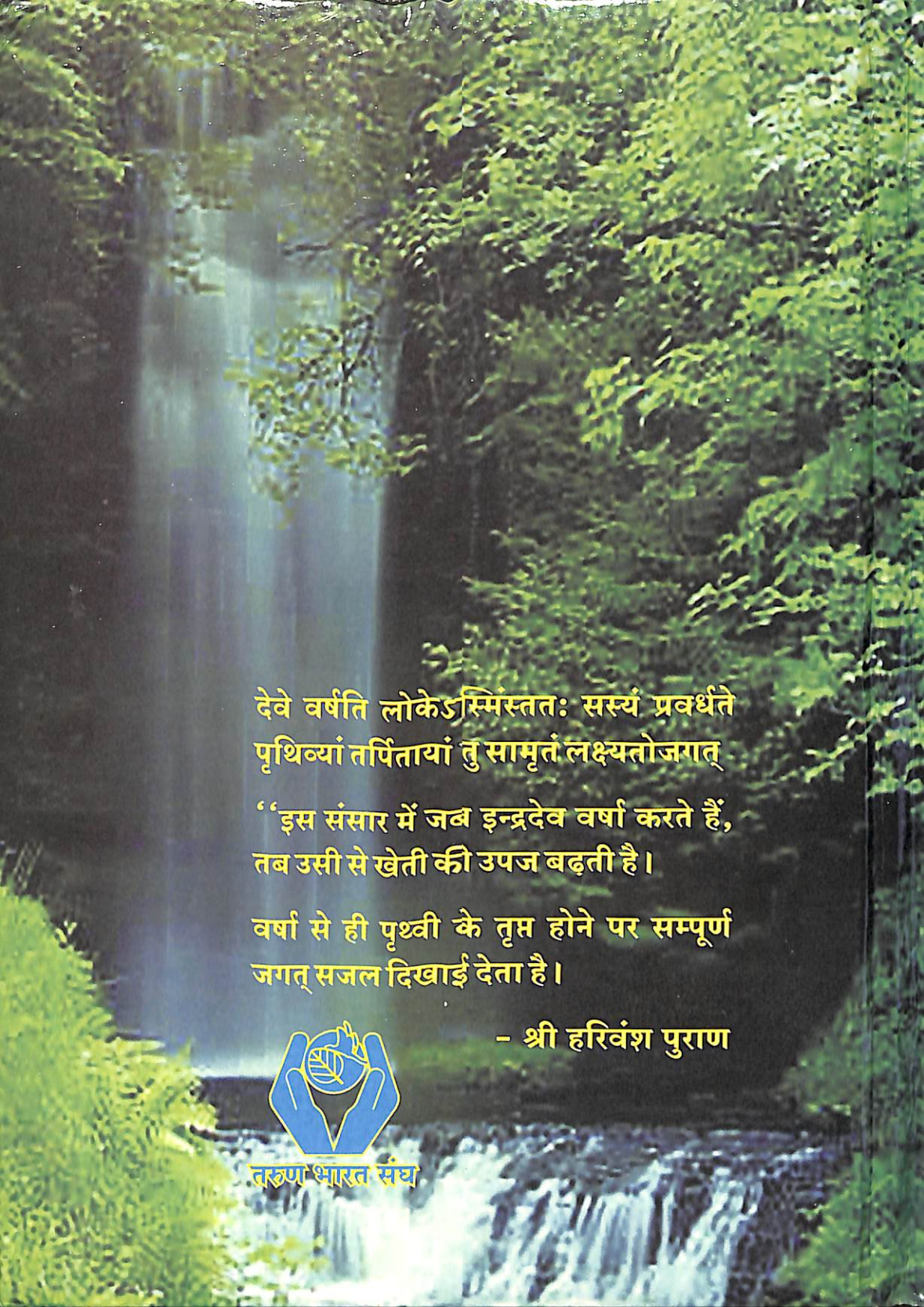

देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततः सस्यं प्रवर्धते
पृथिव्यां तर्पितायां तु सामृतं लक्ष्यतोजगत्

''इस संसार में जब इन्द्रदेव वर्षा करते हैं,
तब उसी से खेती की उपज बढ़ती है।

वर्षा से ही पृथ्वी के तृप्त होने पर सम्पूर्ण
जगत् सजल दिखाई देता है।

- श्री हरिवंश पुराण

तरुण भारत संघ